इहलोक

पल्लवी प्रसाद

हिन्दी ADDA

इहलोक

स्थान : गया शहर, रमना बाजार। ...बाजारों में बाजार, रमना बाजार! यहाँ दूर दूर तक तंग सड़कों के किनारे हलवाइयों की दुकानें सजी हैं। बढ़ती हुई गर्मी को धकियाती हुई चूल्हों की आग और उन पर चढ़े हैं खौलते तेल से भरे कड़ाहे। देखिए, चीकट धोतियाँ और थुलथुल छातियों पर ऊपर मुड़ी हुई गंजियाँ पहने, काम करते हुए तोंदिले

हलवाई। चारों ओर मिठाइयों की विपुलता है और उनकी तादाद को ललकारती हुई मक्खियों की सेना... भिन्न-भिन्न करती चमकीले नीले-लाल रंगों वाली सेनापति 'बड़ी मक्खी' भी।

बाबू बटुकनाथ सहाय ताँगे पर सवार बैठे चले आ रहे हैं। ताँगे के पायदान पर, ठीक उनके पैरों के पास उनका काले रंग का सफरी बैग रखा है। उन्होंने ताँगे वाले से छंगुलाल हलवाई की दुकान के सामने ताँगा रोकने को कहा। ताँगे से नीचे उतर कर उन्होंने अपना बैग उठाया, कुर्ते की जेब से बटुआ निकाला और ताँगे वाले को भाड़ा चुकता किया। दुकान पर बैठे हुए छंगुलाल ने उन्हें देखते ही अभिवादन किया "प्रणाम, बड़े बाबूजी!" अभिवादन के उत्तर में बटुकनाथ ने सवाल पूछा, "सब कुशल-मंगल तो?" - "जी, बड़े बाबूजी। आपकी किरपा है।" दुकान का नौकर हरे पत्तों के दोनों से मुँह-बँधी मिट्टी की छोटी सी हांडी में दस नग 'काला-सफेद' पैक कर लाया। काला-सफेद माने पंतुआ (काला) और रसगुल्ले (सफेद) की मिठाइयाँ। छंगुलाल ने बाबू बटुकनाथ का पसंदीदा नमकीन तौल कर उन्हें थमाया और बदले में सौदे की कीमत पाई। बाबू बटुकनाथ ने बड़ी सावधानी से अपना काला बैग खोला और नमकीन का वह पैकेट अंदर रख कर पुनः बैग बंद कर दिया। बैग के अंदर पहले से ही एक बढ़िया शराब की बोतल मौजूद है - उनके सप्ताहांत का मनोरंजन।

बाबू बटुकनाथ हर सप्ताहांत को इसी प्रकार अपने घर लौटते हैं। वे जमुई में पोस्टमास्टर हैं। वे हर शनिवार की शाम चार बजे वाली बस से गया, अपने घर आते हैं और सोमवार की अल्ह सुबह नौकरी पर लौटने, जमुई के लिए निकल जाते हैं। छंगुलाल हलवाई की दुकान के ठीक पीछे उनकी पुश्तैनी हवेली खड़ी है - रंग-रोगन और मरम्मत को तरसती हुई बूढ़ी हवेली। जब परिवार की जरूरतें रेहन पड़ी हों तो हवेली की कौन पूछता है? इधर कई वर्षों से हवेली का एक हिस्सा बटुकनाथ के हाथ से हमेशा के लिए निकल गया है। उनके पिता के समय से चले आ रहे किरायेदार उस हिस्से के मालिक बन बैठे। बटुकनाथ के पिता ने किरायेदार से न कभी किराया ही बढ़वाया और न ही कभी हवेली खाली करने का तकाजा किया। इसका नतीजा यह हुआ कि पिता की मृत्यु के उपरांत जब तक बटुकनाथ जमीन-जायदाद की लगाम कसते, हवेली का किराया वाला हिस्सा उनके हाथों से निकल चुका था।

वे कोर्ट-कचहरी के लिए उफनने लगे लेकिन उनके साले के एक घनिष्ठ मित्र वकील ने समझाया था, "क्या कीजिएगा केस-मुकदमा लड़ के? आपके रुपये हलाक होंगे। नोटिस पर ही केस टूट जाएगा। क्या लिखेंगे आप नोटिस में? 'कॉज ऑफ एक्शन' कब शुरू हुआ... तीस बरस पहले? बहुत देर हो चुकी है, जनाब! कोर्ट आपके विपरीत फैसला करेगी। वह 'लॉ ऑफ प्रिस्क्रिप्शन' के तहत आपके किरायेदार को कानूनन मालिक घोषित कर देगी। भलाई इसी में है कि चुप पड़े रहें।" बटुकनाथ को अपने स्वर्गीय पिता की दरियादिली और लापरवाही पर बेइंतहा क्रोध आया था। किंतु अब चुप लगा जाने के सिवा उनके पास चारा ही क्या था?

अपने हिस्से की हवेली में प्रवेश करते हुए बटुकनाथ ने नौकर को आवाज लगाई, "शंकर!" शंकर हड़बड़ाता हुआ भीतर से दौड़ा चला आया। उसने लपक कर मालिक के हाथों से बैग और मिठाई की हांडी ले ली। साथ ही उन्हें खबर दी कि 'मल्किनी' मंदिर में कीर्तन सुनने गई हैं। शंकर ने सबसे पहले मिठाई 'चौके' में रखी फिर मालिक का बैग उनके कमरे में रख आया। तत्पश्चात वह आँगन में पहुँच कर फुर्ती से चाँपाकल चलाने लगा। कल से गिरते हुए पानी की मोटी धार के नीचे बटुकनाथ ने अपने मुँह, हाथ और पैर रगड़ कर धोए। शंकर के दिए तौलिए से मुँह पोंछते हुए उनकी आँखें आँगन से जुड़े हवेली के दूसरे हिस्से की छत पर चली गईं। वहाँ कोई न था... किसी की आहट भी नहीं। बटुकनाथ कुछ अनमने से अपने कमरे में चले गए। शंकर झटपट जलपान की दो तश्तरियाँ कमरे की छोटी तिपाई पर रख गया, साथ ही एक गिलास और पानी का लोटा भी। जलपान कर के बटुकनाथ अपने विशाल पलंग पर फैल गए। ...अचानक बटुकनाथ की झँपी आँखें खुल गईं। क्यों खुल गईं, कोई आहट तो न थी? बिस्तर पर जहाँ वे लेटे पड़े थे वहाँ से खुले दरवाजे के पार आँगन का एक बड़ा सा टुकड़ा दिखाई देता था। आँगन पर छत के मुँडेर की छाया अब भी ज्यों की त्यों थी यानी उनकी आँखें कुछ मिनटों के लिए ही लगी थीं। उन्होंने देखा, मुँडेर की छाया से लगी हुई एक परछाईं खड़ी है। बटुकनाथ की धड़कनें बढ़ गईं। उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं...' ...लाल...पीला...या गुलाबी वस्त्र?' - वे बिलकुल उनके सामने ही पड़ गईं हो, आज तक ऐसा नहीं हुआ। लेकिन बटुकनाथ ने कभी-कभी उन्हें दूर से देखा है।

नीलप्रभा तेजी से हाथ की सिलाई-मशीन चला रही हैं। एक अदृश्य वेग से सुई किसी मोटे, खाकी रंग के कपड़े के ऊपर-नीचे चल रही है। उनके दस वर्षीय बेटे विनोद के पुराने स्कूल यूनिफॉर्म की पैंट बुरी तरह घिस के बदरंग हो गई है। कल सुबह वह यह नई पैंट पहन कर स्कूल जाएगा। नीलप्रभा की नजरें दीवार-घड़ी की ओर उठीं, 'साढ़े चार बज गए? वे आ गए होंगे...।' मन में यह विचार आते ही उन्होंने मशीन पर अपने हाथ रोक दिए। वह सँभलते हुए अपनी कुर्सी से उठीं कि कहीं मशीन में लगा कपड़ा न खिंच जाए। बहुत देर तक बैठे रहने से उनकी कमर अकड़ गई है। कमरे में लगे दर्पण के आगे वे पल भर को ठिठकीं। उन्होंने अपनी खुल आईं लटों को कानों के पीछे उलझाया, उँगलियों से गाल पोंछे और तेज कदमों से सीढ़ियों की तरफ बढ़ गईं। ...कोठे पर डाले कपड़े उठाने के लिए। वे सूख गए होंगे।

नीलप्रभा रस्सी पर सूखते कपड़े उठाते जातीं और उन्हें अपने कंधे और छाती पर लादती जातीं किंतु उनका ध्यान कहीं और है। उनकी नजरें नीचे पड़ोसी के आँगन को 'हेर' रही हैं। वहाँ सन्नाटा है। शैल जी सुबह बता रही थीं कि उन्हें आज शाम राम-मंदिर कीर्तन में शरीक होने जाना है। मालूम पड़ता है वे घर पर नहीं हैं। रसोईघर से खटर-पटर की आहट सुनाई दे रही है। अवश्य, शंकर शाम की तैयारी में लगा हुआ होगा। नीलप्रभा ने छत पर पड़ी हुई टूटी खटिया के ऊपर सूखे कपड़ों का अंबार गिराया और छत की मुँडेर से लग कर खड़ी हो गईं, ठंडी साँसें भरती हुईं। पड़ोस के आँगन में बटुकनाथ के कमरे के बाहर छत से झूलते हुए बाँस के 'अलना' पर उनका सद्यः उतारा कुर्ता टँगा है। उसकी चुन्नट भरी बाँहें धरती की ओर झूल रही हैं। नीलप्रभा उस कुर्ते को बहुत देर तक एकटक निहारते रही इस तस्सली से कि, 'आ गए हैं। सो रहे होंगे।' उनकी पीठ पर ढलती हुई दोपहर का सूरज चमक रहा है। वे नहीं जानती कि आँगन में पड़ती हुई उनकी परछाईं ने किसी को जगा दिया है। थोड़ी देर बाद वे कपड़े उठाए छत से नीचे उतर आईं।

शाम के छ बजे शैलकुमारी मंदिर से घर लौटीं। वे भलीभाँति जानती हैं कि उनके पति बहुत पहले ही घर पहुँच गए होंगे। दोपहर को कीर्तन में जाते वक्त वे शंकर को जरूरी निर्देश व हिदायतें दे कर गईं थीं। शैलकुमारी ने जब अपने कमरे में प्रवेश किया तब बटुकनाथ अपने पलंग पर लेटे हुए कोई पत्रिका पढ़ रहे थे। उन्होंने लेटे हुए पति के

चरण हौले से छुए और उनके सिरहाने जा खड़ी हुईं। उन्होंने अपना रूमाल खोल कर पूजा के फूल-पत्र पति के मस्तक से छुआ कर वापिस रख लिए और उन्हें खाने के लिए भगवान का प्रसाद दिया। तब जा कर बटुकनाथ की तंद्रा टूटी। वे पलंग पर उठंग कर बैठ गए। उन्होंने अपनी अँजुरी फैला दी और प्रसाद ग्रहण किया। शैलकुमारी ने मुड़कर अलमारी खोली। उन्होंने अपने कंगन-नेक्लेस इत्यादि गहने उतार कर गहने के बक्स में रखे। फिर पहनी रेशमी साड़ी उतार कर घर की सूती धोती पहन ली। इन नाना प्रकार के कार्यों को संपन्न करते हुए वे अपने पति से बातचीत करते रहीं। कीर्तन में किन-किन लोगों से भेंट हुई, क्या-क्या बातें हुईं आदि - "जानते हैं, आज वहाँ डॉक्टर साहब की पत्नी मिल गईं! वे कल ही अपने मायके हजारीबाग से लौटी हैं। ...अरे! भूल गए क्या आप? सरोज बेटी की ससुराल के मुहल्ले में ही उनके भाई रहते हैं।" इस पर बटुकनाथ ने पूछा, "सरोज की क्या खबर है? कैसी है वह?" शैल खुशी-खुशी बोलीं, "वहाँ सब कुशल-मंगल हैं। मैंने उनसे पूछा कि आपने हजारीबाग जाने से पहले हमें खबर क्यों न भिजवाई, हम भी बेटी के ससुराल कुछ न कुछ डाली-तोहफा भिजवाते।

वे कहने लगीं कि अचानक ही उनके भाई की गंभीर रूप से तबियत खराब होने की खबर आ गई सो होश ही नहीं रहा। उन्हें आनन-फानन निकलना पड़ा।" बटुकनाथ ने चिंतित स्वर में पूछा, "कैसी है अब उनके भाई की तबियत?" - "उन्हें अस्पताल से घर ले आया गया है। हृदय रोग है परंतु अब तबियत सँभल गई है...।" तभी शैल का ध्यान आँगन पार स्थित रसोई की तरफ चला गया। यह शंकर किससे बातें कर रहा है? उन्होंने शंकर को आवाज लगाई, "शंकर... कौन आया है?" वहाँ से उत्तर मिला - "अभी आया, माँजी!" चंद मिनटों के अंदर ही शंकर हाथ में एक छोटा डिब्बा लिए हाजिर हुआ, "विनोद भैया यह ले कर आए थे। भाभीजी ने भिजवाया है।" यूँ कहते हुए शंकर ने वह डिब्बा अपनी माँजी को पकड़ा दिया। डिब्बा कुछ गर्म था। शैल ने उसका ढक्कन खोला तो खुशबू दूर बैठे हुए बटुकनाथ के नथुनों में समा गई। इस तरह की खुशबू उन्हें चिर परिचित लगने लगी है। डिब्बे पर अनजानी फिर भी मानो अपनी सी उँगलियों के छाप हैं... सालन में उनकी छुअन का स्वाद। भोजन पकाने वाली की देह में भी यह गंध समा गई होगी? बटुकनाथ के अनायास सूख आए कंठ में हरकत हुई। शैल पति को दिखाने के लिए खुला डिब्बा उनकी ओर बढ़ाते हुए बोलीं, "पड़ोसन ने

कटहल की सब्जी भेजी है।" प्रतिक्रिया में बटुकनाथ पत्रिका को गौर से पढ़ने लगे। न जाने उन से या अपने आप से बोलती हुई आँगन में जाती शैल की बात उनके कानों में पड़ रही है, "...बहुत भली हैं बेचारी। बड़ा खयाल रखती हैं। बस जान जाएँ कि बड़े बाबूजी आने वाले हैं फिर जरूर अपनी रसोई से कुछ विशेष भेजती हैं। अखिलेश की यह मनपसंद सब्जी है...।" पुनः एकांत पा कर बटुकनाथ ने पत्रिका बंद की और चुप लेट गए। वे अपने सिर को बाँहों की टेक दिए, चित्त लेटे कमरे की छत से चल रहे पंखे की मंद-गति को निहारते रहे। बिजली का वोल्टेज मद्धिम है। बैग में रखी बोतल खोल कर मुँह से लगाने की उन्हें उत्कट इच्छा हुई। किंतु आज यह संभव न हो सकेगा। आज एकादशी है इस बात का उन्हें पहले स्मरण नहीं रहा। पत्नी ने व्रत रखा है और वे अभी-अभी मंदिर से लौटी हैं। ऐसे में वह पी नहीं सकते। उन्होंने एक लंबी, ठंडी साँस छोड़ी।

बाबू बटुकनाथ सहाय बस ऐसे ही हैं - सज्जन और सच्चरित्र। लोग उनकी भलमनसी के किस्से कहा-सुना करते हैं। वे एक आदर्श गृहस्थ हैं। होश सँभालते ही पिता ने उनकी शादी कर दी। फिर बच्चे हो गए। पोस्टल डिपार्टमेंट की नौकरी के बूते उन्होंने पिता द्वारा लिया एक-एक कर्ज चुकाया है। विरासत में कर्ज के अलावा उन्हें यह झगड़े-टंटे वाली जर्जर हवेली मिली जिसका आधा हिस्सा ही अब उनके अधिकार में बचा है। गाँव में थोड़ी सी पुश्तैनी जमीन है। खेतों से साल भर के खाने के अनाज के अलावा थोड़ी-बहुत आमद भी हो जाया करती है। रिश्तेदारी में आए दिन कहीं न कहीं ब्याह-मुंडन-श्राद्ध लगे रहते हैं। संबंधियों-परिजनों के बीच का कुल व्यवहार उन्हें इतने ही में निबाहना है। तिस पर जीवन संगिनी का हाथ-खोल खर्च। शैलकुमारी समाज और परिवार में धर्म और धन के बूते धाक जमाने के लिए सदा तत्पर रहती हैं। "आदमी की इज्जत बड़ी चीज है।"- यह बात वह पति को घोंट-घोंट कर समझाती रहती हैं। और बटुकनाथ? वे स्वयं पत्नी को कुछ नहीं समझा पाते। दरअसल वे अपनी बात किसी को नहीं समझा पाते। समझाना दूर, किसी से कुछ कहना भी उनके लिए कठिन है। वे एक दबे-दबे, घुटे-घुटे इनसान हैं - इस मार्के के इनसान लोगों को बहुत प्रिय होते हैं। इसीलिए लोग बटुकनाथ की भलमनसी की चर्चा करते नहीं अघाते।

नीलप्रभा के लिए रविवार विशेष श्रम का दिन होता है। छुट्टी के दिन वे पौ फटने से पहले ही उठ जाया करती हैं। अपनी गृहस्थी की वे अकेली औरत जान हैं जिनके कंधों पर घर-भर का भार है। वे मनोहरलाल अग्रवाल की पत्नी हैं। मनोहरलाल बिजली का सामान बेचने का कारोबार करते हैं। उनका अच्छा खाता-पीता परिवार है। उन्होंने दो वर्ष पहले हवेली का यह हिस्सा इसके तात्कालिक मालिक (बटुकनाथ के पूर्व किरायेदार) से खरीदा है, कुछ कम दामों में। मनोहरलाल रोज सवेरे घर छोड़ते हैं दुकान जाने के लिए। दोपहर को डेढ़ बजे वह दुकान बंद कर के खाना खाने और सुस्ताने के लिए घर आते हैं। कभी-कभार जब उन्हें बाजार की तरफ ही कोई काम निकल आता है तब वे टिफिन मँगवाने के लिए दुकान के नौकर को घर भेज देते हैं। उस दोपहर वह घर नहीं आते। मनोहरलाल के पौरुष और नीलप्रभा की सेवा से उनके गृहस्थी की गाड़ी पटरी पर बनी हुई है। हालाँकि इस गाड़ी में अन्य सवारियाँ भी हैं - मनोहरलाल की बानवे वर्षीय दादी 'अय्याजी' और उनकी सत्तर वर्षीय माता 'अम्माजी'।

मनोहरलाल और नीलप्रभा के दो बेटे हैं, दस वर्षीय विनोद और चार वर्षीय मोनू। नीलप्रभा का हर पल इन में से किसी न किसी प्राणी के साथ गुँथा रहता है। लड़के तो खैर लड़के ही हैं - उनका स्कूल-पढ़ाई, खाना-पीना, लड़ाई-टंटा, गिरना-पड़ना, लाड़-प्यार हमेशा लगा ही रहता है। नीलप्रभा की सास गठिया और दमे की मरीज है, उन्हें आँखों से भी कम सूझता है। चूँकि वे डरती हैं इसलिए ऑपरेशन के लिए तैयार नहीं होतीं। दादी सास, अय्याजी संसार से उठने की राह देख रही हैं... अब परिवार भी इस इंतजार में शामिल हो गया है। वे न देख पाती हैं न सुन पाती हैं। मुँह से "अं...अंss...अं:..." जैसे शब्द मानिंद इशारों से अपनी जरूरतों के इजहार का प्रयास करती हैं। लोग अधिकतर समझ नहीं पाते। उन्हें खाया हुआ भोजन नहीं पचता। नीलप्रभा आए दिन उनका बिस्तर धो कर छत पर सूखने डाला करती हैं। दांपत्य भवसागर को पार करने के लिए आवश्यक है कि पुरुष में पौरुष हो और स्त्री में सेवा तथा इन दोनों गुणों का उचित मिलन हो। परंतु जहाँ पौरुष में गर्व और सम्मान निहित है वहीं सेवा में आत्महुति है जो प्रेम और 'पोस' के अभाव में आत्मघुटन में परिवर्तित हो जाती है। नीलप्रभा इसी आत्मघुटन की शिकार हैं। उनकी गृहस्थी के हालात और जिम्मेदारियाँ कुछ इस प्रकार के हैं कि उनसे थोड़े वक्त का भी अवकाश

प्राप्त कर पाना नीलप्रभा के लिए मुमकिन नहीं है। यही कारण है वे पारिवारिक और सामाजिक प्रसंगों में शिरकत नहीं कर पाती हैं। अब धीरे-धीरे लोगों ने उन्हें पूछना छोड़ दिया है। वे एक ही सवाल के बोझ तले दबीं छटपटाती हैं - उनके पिता ने ऐसे घर में क्यों उनका कन्यादान किया?

"भाभीजी...भाभीss...जीई...।" शंकर की पुकार से नीलप्रभा की नींद टूटी। वे अचकचा कर उठ बैठीं। फिर वे समझ गईं कि शैल जी उन्हें शंकर के मार्फत बुलवा रही हैं। वे तुरंत उत्तर नहीं दे पाईं। पास ही में उनके पति मनोहरलाल और नन्हा बेटा मोनू दोपहर की दुर्लभ नींद सो रहे थे। ऐसा करने से वे जाग जाते। नीलप्रभा आँचल लपेटते हुए पलंग से उतरीं और अपने आँगन के कोने में पड़ने वाले दरवाजे की साँकल खोलने लगीं। इस हवेली के निर्माण के समय से ही यह दरवाजा 'ई' आँगन को 'ऊ' आँगन से जोड़ता आया है। फिर बटुकनाथ और उनके किरायेदार के झगड़े में यह रास्ता बरसों सील बंद पड़ा रहा। आजकल यह फिर खुल गया है। नीलप्रभा वाले हिस्से में इस दरवाजे के भीतर दो हौद निर्मित हैं। पुराने जमाने में इनमें 'गोईठा', लकड़ी और कोयला यानी चूल्हे के लिए ईंधन स्टोर किया जाता था। अब यह हौद मनोहरलाल के घर का कबाड़ रखने के काम में आते हैं।

नीलप्रभा ने किवाड़ खोला। उनकी उनींदी आँखें आँगन में बिखरी हुई तीन बजे की धूप से चुँधिया गईं। सामने शैलकुमारी के आँगन में औरतों का जमावड़ा लगा हुआ था। वहाँ चूड़ियाँ बेचने वाली बुढ़िया अपना बाजार फैलाए बैठी थी। वह शैलकुमारी की कलाइयों पर चूड़ियाँ चढ़ा रही थी। वह पहले ही कई औरतों को चूड़ियाँ पहना चुकी थी जबकि दो-तीन औरतें अपनी बारी आने के इंतजार में बैठी थीं। चूड़ियाँ पहनाने की मशक्कत से बुढ़िया की गुदने रची ढीली बाँहें रह-रह कर झूल जाती थीं। तब उसका नीला-हरा गुदना धूप में चमक उठता। नीलप्रभा को देखते ही शैल ने उनका स्वागत किया, "आइए...आइए! बस आपकी कमी थी। मैंने आपको नींद से उठा दिया न?" नीलप्रभा हँसती हुईं उनके पास बैठ गईं और बोलीं, "कोई बात नहीं। मैं वैसे भी उठती ही।" वे बड़ी दिलचस्पी के साथ बुढ़िया के टोकरे में से चूड़ियाँ उठा-उठा कर उनके रंग-रूप परखने लगीं।

एक रविवार का ही ऐसा दिन होता है जब बटुकनाथ का अपने पुराने मित्रों के संग उठना-बैठना संभव हो पाता है। आज वे सुबह से ही सिरिस्ता (बैठक) में बैठे हैं। उन्हें मिलने वाले आज आते रहे। इस से पहले की एक मेहमान उठता, दूसरा आन पहुँचता। शैल को हार कर पति एवं उनके मित्रों के लिए भोजन शंकर द्वारा बाहर ही भिजवाना पड़ा। आखिरकार मेहमान मित्रगण खा-पी कर अपने-अपने घर जाने के लिए उठे। बटुकनाथ उन्हें छोड़ने बाहर तक गए। लौटने पर, साँझ ढले इससे पहले कुछ देर विश्राम करने की लालसा मन में लिए उन्होंने अपने कमरे का रुख किया।

वे बेचारे क्या जानते थे कि उनके आँगन में मुहल्ले की सारी औरतें बैठीं चूड़ियाँ पहन रही हैं? आँगन में पैर देते ही बटुकनाथ ठिठक गए - सामने स्त्रियों के बीच घिरी नीलप्रभा बैठी थीं, अपनी दोनों बाँहें फैलाए। एक बाँह पर गुलाबी आँचल पसरा पड़ा था, दूजी खुली थी। उनकी खुली बाँह की कलाई पर चूड़ी वाली चूड़ियाँ चढ़ा रही थी। नीलप्रभा किसी बात पर खिलखिला कर हँस रही थीं। बटुकनाथ को वहाँ मौजूद देखते ही उनकी हँसी लुप्त हो गई। वह विस्फारित नेत्रों से बटुकनाथ को देखते ही रह गईं। बड़ी-बड़ी अँखियों में उचाट हुई नींद से फैल आया काजल, खुला सिर, फैली बाँहें और ठगे भाव वाली उनकी मनमोहक मूर्ति ने मानो बटुकनाथ के पैरों में ठक से ताला जड़ दिया। उनके कदम उठ न पाए। शायद किसी ने शंकर को पुकारा? बटुकनाथ को होश आया। मानो अनायास ही उनकी सुन्न टाँगों में रक्त का प्रवाह हुआ। परंतु मारे गफलत के वे अपने कमरे की ओर बढ़ने की जगह उलटे पैर सिरिस्ता में लौट गए। फिर शाम को दिया-बाती होने की बेला तक वहीं अकेले और उदास बैठे रहे।

हर सोमवार की सुबह की तरह, दूसरी सुबह बाबू बटुकनाथ तड़के ही उठे और नहा-धो कर तैयार हो गए। उन्होंने चाय पी और उसके संग मामूली सा नाश्ता किया। शंकर ने रास्ते के लिए खाना साथ बाँध दिया। उन्होंने पूजाघर में बैठीं पत्नी से विदा ली, देवता को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बस डिपो जाने के लिए अपना काला बैग उठाए रिक्शा पर जा बैठे। इस पूरे दौरान उनकी निगाहें चंचल रहीं। वे बार-बार आँगन की छत की ओर ताकते रहे थे। लेकिन इतनी सुबह छत की मुँडेर पर उड़ते-फुदकते चिड़िया और कबूतर के सिवा कोई न दिखा था। आखिर वे जमुई के लिए रवाना हो गए। उधर बाबू बटुकनाथ रवाना हुए और इधर थोड़े ही समय बाद सद्यःस्नाता

नीलप्रभा गमकती हुईं उनके घर पहुँचीं। उन्हें खूब मालूम है कि अब तक घर के मालिक जा चुके होंगे। इसलिए वे बेधड़क और बेलिहाज शंकर को पुकारती हुईं सिरिस्ता में प्रवेश कर गईं। शंकर हाजिर हुआ, "जी, भाभीजी।" नीलप्रभा ने उससे पूछा, "शैल दीदी कहाँ हैं? क्या वे सुबह की पूजा-अर्चना से फुर्सत पा गईं?" शंकर ने उत्तर दिया, "जी भाभीजी, माँजी अपने कमरे में हैं। आप भीतर चली जाएँ।" शंकर की बात पूरी होते-होते नीलप्रभा शैलकुमारी के कमरे की ओर बढ़ गईं। शैलकुमारी ने आहट पा कर अपनी नजरें उठाईं तो दरवाजे पर नीलप्रभा को खड़ा पाया। वे बोलीं, "भीतर आइए न। आपका ही इंतजार था।

मैं जानती थी इनके जाते ही आप पहुँचेंगी।" और दोनों स्त्रियाँ हँस पड़ीं। नीलप्रभा उमंग भरे कदमों से चलती हुईं बटुकनाथ के स्टडी मेज से लगभग लिपट कर खड़ी हो गईं। उन्होंने अदम्य लालसा से बटुकनाथ की किताबों को छूते हुए पूछा, "इस बार बाबूजी कौन सी नई किताबें लाए?" शैल कुमारी पान के वास्ते सुपारी को सरौते से कतरने में मग्न थीं। वे व्यस्त भाव से बोलीं, "न जाने क्या लाते हैं, क्या ले जाते हैं? ये मुई किताबें कोई पढ़ता ही क्यों है? ...जानती हैं नील, नए-नए में इन्होंने मुझे भी किताबों का कलमा पढ़ाने की कोशिश की थी। लेकिन मुझे तो दो वाक्य पढ़ते ही नींद आने लगती है। भई मुझे अपनी ही कहानी सबसे अच्छी लगती है, भला लोगों की क्यों पढ़ूँ?" परंतु नीलप्रभा उनकी यह बातें कहाँ सुन रही थीं। मेज की दराज में रखी हुईं दो नई पत्रिकाएँ अभी-अभी उनके हाथ लगी थीं - 'मानसरोवर' और 'काल' के ताजा अंक। अवश्य ही, इन्हें वे पढ़ सकें इसलिए बटुकनाथ उनके वास्ते पीछे छोड़ गए थे? यह खयाल मात्र नीलप्रभा के हृदय को आह्लादित कर गया। शैलकुमारी की स्वगतोक्ति जारी रही - "...मैं इन किताबों को हाथ भी नहीं लगाती। इन्हें शंकर ही उठाता है और झाड़-पोंछ कर रखता है। कोई एक भी यहाँ से वहाँ हो जाए तो यह मानो थाना-फौजदारी को आमदा हो जाते हैं।" यूँ कहते हुए वे हँस पड़ीं। फिर जरा रुक कर उन्होंने नीलप्रभा से पूछा, "आप ही बताएँ! क्या रस मिलता है आपको इन्हें पढ़ने में, जरा मैं भी सुनूँ?" - "अच्छा लगता है दीदी..." नीलप्रभा ने बच्चों सी मासूम हँसी हँस कर पुनः अपनी कही बात पर जोर दिया, "...बहुत अच्छा!" वे बड़ी तन्मयता से अपने मुलायम आँचल से बटुकनाथ का दवात, कटर, कलम-दान आदि पोंछ कर उन्हें यथास्थान रखते जा रही थीं। - अपने आप में खोई-खोई सीं। उस वक्त नीलप्रभा को

यूँ करते हुए जो बटुकनाथ देख पाते तो उस आँचल की बोसी लेने के लिए एकबारगी अपनी जान वार देते।

नीलप्रभा की इन अंतरंग कारस्तानियों से नावाकिफ, बटुकनाथ राज्य परिवहन की खटारा बस में जमुई के धूल भरे टूटे-फूटे रास्ते पर बेतहाशा हिचकोले खा रहे हैं। हालाँकि इस वक्त उनके दिल में कई नाजुक खयालात टूट-बन रहे हैं। इस जानलेवा गर्मी में किसी का बिछा आँचल, फैली बाँहें... अनावृत माथा उनका पीछा कर रहे हैं। नींद से फैल गए काजल भरी ठगी-ठगी आँखें... उन्हें अपने पास लौट आने का न्योता दे रही हैं। उसी वक्त एक अजीब इत्तिफाक हुआ। बस के कर्कश-ध्वनि संगीत के बीच अगला गीत बज उठा - "कजरा मोहब्बत वाला, अँखियों में ऐसा डाला... कजरे ने ले ली मेरी जान..." और बटुकनाथ की जान पर बन आई। वह चाकू की धार पर टिकी है, अब गई कि तब गई। "ऐ अमरूद वाले! ...कैसे दिए अमरूद?" बटुकनाथ ने बस में चढ़ आए एक अमरूद वाले को रोक कर पूछा। उन्होंने सोचा होगा इसी बहाने कुछ ध्यान बँटेगा। अमरूद वाला बस की सीट से अपनी पीठ और टाँगों को टेक कर खड़ा हो गया। वह हरे पत्तों के दोने में अमरूद की फाँकें काट कर लगाने लगा। पेड़ से ताजे टूटे फल की फाँकों पर उसने नमक और मिर्च छिड़का और दोना अपने ग्राहक की ओर बढ़ाया। बटुकनाथ ने पाँच रुपये के अमरूद मोल लिए और खिड़की से बाहर दौड़ रहे नजारों को ताकते हुए खाने लगे। लेकिन सीने के दर्द की तरह कमबख्त अमरूद भी कसैला निकला।

बाबू बटुकनाथ को पढ़ने-लिखने का भारी शौक है। किताबें और कहानियाँ पढ़ कर वे अपने भीतर की एकलता को दुनिया जहान से साझा कर लेते हैं। विश्व के नामी-गिरामी कवि और लेखक मानो उनके सखा हैं और उनके द्वारा रचे गए पात्र बटुकनाथ के संबंधी। दफ्तर से घर लौटने पर यानी किराये के कमरे पर उनकी अधिकतर शामें अकेले गुजरती हैं। कभी वे शाम को सैर पर निकल पड़ते हैं तब राह में मित्रों और परिचितों से मुलाकात हो जाती है। कभी-कभी मित्रों के घर उनका आना-जाना भी होता है। किंतु गृहस्थ मित्रों की पारिवारिक जिम्मेदारियाँ हैं जिनमें जाहिर है, वे उलझे रहते हैं। सो रोजाना मिलना-जुलना संभव नहीं। इन बातों से

बटुकनाथ को विशेष फर्क नहीं पड़ता चूँकि वे पढ़ने के पुराने 'लती' हैं। अकेले भी उनका वक्त अच्छा गुजरता है। वे लिखते भी हैं।

उनके लेख और कविताएँ पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। वे देश और दुनिया की तरह-तरह की सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक पत्रिकाओं का विशेष शौक पालते हैं। मोटी सी मोटी किताब को वे बड़े चाव से पढ़ जाते हैं। इस प्रकार वर्षों से पाठ्य सामग्री इकट्ठा करते हुए उन्होंने अपनी एक दिलचस्प लाइब्रेरी तैयार कर ली है। पहले बटुकनाथ कमरे की सफाई की गरज से हर महीने पढ़ी हुईं पत्रिकाएँ और किताबें सहेज कर अपने घर, गया ले जाते थे। परंतु आजकल वे हर हफ्ते बिना नागा अपने संग कोई न कोई पत्रिका-किताब घर ले जाते हैं। पास में कुछ नया न हो तो बस डिपो के बुक सेलर से विशेष रूप से खरीद कर साथ रख लेते हैं। वे जान गए हैं कि कोई उनके लाए साहित्य के इंतजार में बेकरार रहता है। ...कि कोई चातक हफ्ते भर की तमाम दोपहरियाँ उनसे अपनी प्यास बुझाता है। ...कि कोई टकटकी बाँधे उनके आगमन की बाट जोहता है। उनके आने पर हफ्ते भर की खुराक पाता है।

इस 'कोई' के साथ उनका अनजाना-अनदेखा संबंध उन्हें नवीन सुख देता है। इस लोक में कोई उनकी राह देखे, यह बात ही बटुकनाथ के लिए अनूठी है। उन्हें कोशिश करने पर भी याद नहीं पड़ता कि कभी किसी ने उनकी इस तरह राह देखी हो। उनकी माँ उन्हें बचपन में ही छोड़ कर परलोक सिधार गईं। बिन माँ के बच्चे की भला कौन राह देखता है, उसकी कौन मनुहार करता है? विवाह-संस्कार के पश्चात उन्होंने शैलकुमारी में एक प्रसन्नचित्त और धर्मभीरु स्त्री पाई है। वे तटस्थ मिजाज महिला हैं। ईश्वर पर उन्हें संपूर्ण विश्वास है। फिर बटुकनाथ जैसे पुरुष को पा कर कौन सी स्त्री आश्वस्त न हो उठेगी। दो बातों के लिए शैलकुमारी हमेशा से निःसंदेह हैं और रहेंगी - एक, पति जहाँ से चलेंगे सीधे उनके पास लौटेंगे। दूसरा, ईश्वर संकटों से सदा उनके परिवार की रक्षा करेगा। इस तरह वह सदा धर्म-कर्म-समाज-गृहस्थी में रमी रहती हैं। बटुकनाथ ने उन्हें स्वयं के लिए बेकल कभी नहीं पाया न इससे पहले जो मिला उससे अधिक की आस ही की।

शैलकुमारी के यहाँ पड़ोस से खाद्य पदार्थ आने का सिलसिला कुछ महीनों पहले से शुरू हुआ है। बटुकनाथ ने जब नीलप्रभा को देखा भी नहीं था तब से ही उनकी

पाक-कला का लुत्फ उठा रहे हैं। एक दिन भोजन करते हुए उन्होंने पत्नी से कहा, "पड़ोसी अक्सर पकवान भेजते हैं, तुम भी शंकर से कभी कुछ भिजवा दिया करो।" यह सुन, शैलकुमारी जोर से हँस पड़ी थीं और उन्होंने जवाब दिया था "यह पकवान आपकी गुरू दक्षिणा हैं।" बाबू बटुकनाथ इस बात का सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ पाए थे। तब पत्नी ने उन्हें बात खोल कर समझायी कि पड़ोसन जिनका नाम नीलप्रभा है, उनके जमुई गए रहने पर रोजाना घर पर आती हैं। नीलप्रभा को उनकी किताबों से बहुत लगाव है। वे आए दिन कोई न कोई पत्रिका या किताब पढ़ने के लिए ले जाती हैं और शीघ्र ही उसे लौटा कर नई पाठ्य सामग्री ले जाती हैं। इस बात के लिए वे सजग रहती हैं कि लौटाई गई वस्तु पुनः यथास्थान ही रखी जाए।

वे बटुकनाथ की मौजूदगी के लिहाजवश सप्ताहांत में शैल कुमारी से मिलने नहीं आतीं। परंतु बटुकनाथ के लिए कोई विशेष व्यंजन भेजना कभी नहीं भूलतीं। शैल कुमारी के मुँह से इसी प्रकार के छोटे-मोटे किस्से अक्सर सुनते हुए न जाने कब और कैसे बटुकनाथ को नीलप्रभा से मोह सा हो गया। हमेशा से नौकरों के हाथ का भोजन खाने के अभ्यस्त बटुकनाथ यह सोच कर रोमांचित हो उठते कि कोई स्त्री चूड़ियाँ खनकाती, धुएँ से बेहाल, पसीने से लथपथ देह उनके खातिर राँधती है... ताकि उन्हें स्वाद मिले? ओह! क्या ही अच्छा होता कि वे उनके सामने आतीं। उन्हें भोजन परोसतीं, पानी पिलातीं और पंखा झलतीं। इतना ही नहीं... उनसे बातें भी करतीं। जीवन में पहली बार बटुकनाथ के मन में किसी से कहने और कहते ही रहने की इच्छा जगी है। ऐसी सुख-भरी कल्पनाओं में डूबते-उतराते उन्हें खाना खिलाने वाली से अनजाने में ही प्रेम हो गया। नीलप्रभा अभागी क्या जानती थीं कि किसी पराये मर्द की क्षुधा मिटाने से वह पराया नहीं रह जाता। उनकी मासूम श्रद्धा में मासूम प्यार छुपा है।

इस बार अंतराल लंबा हुआ जाता है। बाबू बटुकनाथ का घर जाना नहीं हुआ है। कमरे से दफ्तर और दफ्तर से कमरा करते हुए उनका पहला हफ्ता बीत गया। छुट्टी आई, तब वे धनबाद के लिए निकले फिर वहाँ से बस बदल कर सिंदरी पहुँचे। सिंदरी में उनका छोटा पुत्र अखिलेश पढ़ता है। बी.आई.टी. कॉलेज, सिंदरी में गत वर्ष उसका दाखिला हुआ है। रोजमर्रा की व्यस्तता में टालते हुए अब बटुकनाथ के लिए पुत्र के

कॉलेज जाना बिलकुल अनिवार्य हो चला था। वे रुपयों का इंतजाम कर के चले हैं। उन्हें पुत्र की कॉलेज एवं हॉस्टल फीस भरनी है। फीस के अलावा उसकी अन्य जरूरतें, किताबें-पुस्तकें, साजों-सामान, हाथ खर्च यानि जो भी घटा हो उसे पूरा करना है। बटुकनाथ के आने का विशेष औचित्य यह है कि वे पुत्र के प्रॉफेसर और टीचरों से भेंट करने के अभिलाषी हैं। उन्हें डर है कि कहीं अखिलेश को जमाने की हवा न लग जाए और वह अपनी पढ़ाई के प्रति लापरवाह न हुआ जा रहा हो।

पिता का फर्ज निभाने वे यहाँ चले आए हैं ताकि सब-कुछ खुद देख-सुन लें, उनकी शंका का निवारण हो और पुत्र को पिता के सरमाया होने का एहसास भी। दोपहर का भोजन पुत्र के संग खा कर वे उसके पलंग पर विश्राम करने लेट गए। जाहिर है पिता के पहुँचने से अखिलेश की रविवारीय मटरगश्ती में बाधा पड़ गई है। वे कल यानी शनिवार को पहुँचे थे और वह उन्हें कॉलेज घुमा चुका था तथा जिन प्राध्यापकों से मिलने के वे इच्छुक थे उनसे मिलवा भी चुका था। अब वह उनके सामने कुर्सी पर किंकर्तव्यविमूढ़ बैठा है। बटुकनाथ उसे समझा रहे हैं, "देखो, इस छुट्टी में मैं यहाँ चला आया हूँ। इस हफ्ते घर नहीं जा सका। अगले शनिवार जाऊँगा। इसलिए अगले शनिवार तुम जरूर से सरोज के ससुराल हजारीबाग चले जाना। वे लोग भी क्या सोचते होंगे कि हम बेटी को पूछते ही नहीं? मैं कल दफ्तर से समधीजी को पत्र डाल दूँगा। सरोज को तुम रक्षाबंधन पर्व के बहाने लिवा लाना। छोटे भाई हो उसके, अभी लड़के ही हो। हठ करोगे तो वे लोग तुम्हें टाल नहीं पाएँगे। फिर मेरा पत्र तुम्हारे पहुँचने से बहुत पहले ही उन्हें मिल जाएगा, डाक को बमुश्किल दो दिन लगेंगे।" अखिलेश ने चुपचाप अपने पिता की पूरी बात सुनी। फिर बोला, "पिताजी, यह मुझसे न होगा। आने-जाने में मेरा बहुत वक्त जाया जाएगा। मेरी पढ़ाई हर्ज होती है। फिर सरोज को गया पहुँचाने आऊँगा तो वहाँ अम्माँ रुकने का इसरार करने लगेंगी। इसलिए कृपया आप ही उसे लिवा लाएँ।"

बटुकनाथ ने भरसक अपनी खीझ को छुपाने का प्रयास करते हुए कहा, "बेटा, तुम्हें हजारीबाग जाना चाहिए। मैं अकेला कहाँ तक क्या-क्या करूँगा? फसल कटाई के वक्त ही मेरी सारी जमा छुट्टियाँ खप गईं। मुझे रविवार को भी दम मारने की फुर्सत नहीं मिलती। हजारीबाग से सरोज को लाऊँगा फिर उसे गया पहुँचाने जाऊँगा तो

जमुई लौटने के लिए एक दिन और छुट्टी लेनी पड़ जाएगी।" - अखिलेश ने सुझाव दिया, "आपको इतनी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत है? राखी के दिन सरोज से राखी बँधवाने मैं हजारीबाग जा कर सीधे अपने हॉस्टल लौट आऊँगा।" यह सुन कर बटुकनाथ चिढ़ कर बोले, "ऐसा न कहो अखिलेश! तुम्हारी माँ कब से सरोज को लिवा लाने की जिद कर रही है। वह बेचारी त्योहार के बहाने घर आ जाएगी..." लेकिन पुत्र ने उनकी एक न सुनी।

वह पिता की बात काट कर बोला, "आगामी पखवाड़े में मेरी परीक्षाएँ शुरू होने वाली हैं। मैं तो न जा सकूँगा। बाकी आप जैसा ठीक समझें करें।" इस तरह मन ही मन बाप-बेटे के बीच ठन गई। दोनों ही एक दूसरे की उपस्थिति में अस्वस्थ और गुमसुम से जमुई जाने वाली बस के वक्त होने का इंतजार करने लगे। बटुकनाथ अपनी बाँह से आँखों को ढाँपे पलंग पर पड़े हैं। उनके मन में गुबार उठ रहा है जो थोड़ी देर में बुझ गया, पीछे कुछ किरकिरा सा छोड़ गया। यह कल का छोकरा उन्हें बात-बात पर नाउम्मीद किए देता है। यह भविष्य में उनका क्या सहारा बनेगा। अखिलेश मेज से लगी काठ की कुर्सी पर बहुत देर तक बैठा रहा। वह पत्रिका पढ़ने का बहाना करता रहा। हालाँकि वह अपनी तरफ से अपनी मनोभावनाओं को छुपाने का पूरा प्रयास कर रहा था परंतु उसे देख कर साफ पता चलता था कि वह अपने पिता के टलने की राह देख रहा है।

थोड़ी देर बाद उसने पूछा, "आपके लिए चाय ले आऊँ?" फिर पिता के उत्तर का इंतजार किए बगैर ही वह उठ कर कमरे से बाहर निकल गया। करीब बीस मिनट बाद, अखिलेश हॉस्टल के महाराज से चाय बनवा कर ले आया। उसने चाय के गिलास और बिस्कुट वाली तश्तरी पलंग के पास पड़े स्टूल पर रख दी। वह कुर्सी पर पूर्ववत जा बैठा। बटुकनाथ ने अपनी काया समेटी और पलंग पर उठ कर बैठ गए। कमरा संवादहीन है। रह-रह कर चाय की चुस्कियाँ का स्वर सुनाई पड़ता है। चाय का खाली गिलास रख कर बटुकनाथ खड़े हो गए। पलंग के पायताने उनका कुर्ता पड़ा हुआ था। उन्होंने उसे उठा कर झाड़ा और पहन लिया। काले सफरी बैग के अंदर से उन्होंने अपना बटुआ निकाला और अखिलेश को कुछ रुपये दिए। अखिलेश ने रुपये रख लिए। वह लज्जित सा खामोश खड़ा रहा। बटुकनाथ ने पैरों में चप्पलें पहनीं और

अपना बैग उठाए कमरे से बाहर निकल गए। अखिलेश ने उनका बैग ले लिया। वह उन्हें बस अड्डे तक छोड़ने गया।

हमेशा की तरह, धूल उड़ाती हुई बस जमुई जाने वाली अधूरी-टूटी सड़क पर हिचकोले खाती दौड़ रही है। बटुकनाथ उदास किंतु सावधानी से बैठे हुए हैं कि कहीं ध्यान चूके और उनका सिर सीट के लोहे से न पटका जाए। बस का कंडक्टर टूटे और पान-रंजित दाँतों वाला काले रंग और मँझोले शरीर का आदमी है। वह यात्रियों से चिल्ला कर बात करता है। बस की घंटी शायद टूट गई है इसलिए वह हर थोड़ी देर पर बस के दरवाजे को हाथ से पीट कर ड्राईवर को बस रोकने या चलाने का इशारा करता है। साथ ही "हे-हे-हे..." पुकारता है।

यूँ पुकारते हुए बटुकनाथ को वह बहुत ही फूहड़ जान पड़ता था। कंडक्टर ही क्यों, इस समय बटुकनाथ को अपना पूरा जीवन इस बस यात्रा और इसके यात्रियों के समान फूहड़ जान पड़ रहा है। उन्हें कभी प्रतीत होता है जैसे जीवन किसी सहरा का असीमित रेतीला विस्तार है। न हरियाली का तिनका है न पानी की एक बूँद मयस्सर होती है। जगह-जगह ठूँठ से खड़े लोग हैं - उनकी ओर मुँह बाए, हाथ फैलाए। बस ने हिचकोला खाया, बटुकनाथ दुःस्वप्न से जागे। बस के गलियारे में पीछे से एक देहाती औरत अपनी छोटी बच्ची को धकेलते हुए आगे बढ़ रही है। बच्ची ने झटके से बचने के लिए बटुकनाथ की सीट कस कर पकड़ ली है। वह चौंकी हुई आँखों से उन्हें घूर रही है। उसकी माँ ने उँगली के पोर भर-भर कर उसकी आँखों में काजल आँजा है। आह! काजल-रंजित आँखें! ...बटुकनाथ की आँखों में नीलप्रभा की याद फुहार बन कर उतरी। उनके दिल में आया वे घर लौट चलें। उन्होंने बमुश्किल दिल को सँभाला। फिर इस भय से कि कहीं नीलप्रभा चली न जाएँ, उन्होंने अपनी आँखें बंद कर लीं और पलकों पर साँकल चढ़ा दिया। वे मुँदी आँखों में नीलप्रभा को लिए नम सपने देखते रहे। आगे जमुई का सफर बेहद सुखद रहा।

इश्क पूरे वजूद में उतरता है। वह आत्मा और शरीर में भेद नहीं करता। पहली बार जब नीलप्रभा बटुकनाथ के स्वप्न में आईं थीं, वे गहरी ग्लानि में डूबे रहे थे। उन्होंने खुद को पढ़ने-लिखने में झोंक दिया। वे बदहवास से दिशाहीन दौड़ते रहे थे, न जाने कौन उनका पीछा करता रहा। उनकी यह साधना कुछ दिन चली, फिर क्या ख्वाब किसी की

रोक मानते हैं? दीवारें जल्द ही भरभरा गईं। नीलप्रभा अब धृष्टता से आती-जाती हैं। बटुकनाथ उनके सामने लाचार हो जाते हैं... और वे भोर होने तलक उन पर हँसते चली जाती हैं। काश वे दोनों जीवन साझा कर पाते, अपने गम और खुशियाँ बाँट पाते। एकांत के क्षणों में बटुकनाथ मन ही मन नीलप्रभा से संवाद करते हैं। लेकिन यदि वह सामने आ जाएँ तो उनकी जुबान से एक लफ्ज न निकलने पाएगा। नीलप्रभा की एक झलक भी सर्पदंश है। वह उन्हें जड़ कर देती है। कहीं सच में अकेले में मुलाकात हो गई तो... तो...? "उफ!" रोटी सेंकते हुए हाथ की उँगली जल गई। आज नौकर बीमार है इसलिए काम पर नहीं आया है। पेट भरने को दो रोटी चाहिए - दो रोटी के लिए इतनी जहमत! उन्हें नीलप्रभा के हाथ के खाने की याद सता रही है। इस याद के स्वाद के सहारे उन्होंने रूखा-सूखा स्वयंपाक मजे से खाया और उठ गए। उन्होंने कमरे को ताला लगाया और झील किनारे सैर करने निकल पड़े।

होते-होते बाबू बटुकनाथ को घर गए एक महीना हुआ जा रहा है। कैलेंडर में टँगे दिन उदासी भरी करवटें ले रहे हैं लेकिन सप्ताह पूरा होने से पहले ही कोई न कोई आवश्यक काम आन पड़ता है और वे घर नहीं जा पाते। यहीं रुक जाते हैं। पिछले रविवार के दिनों में या तो वे कमरे में पड़े रहे या मित्रों संग शराब पीते रहे। नौकर भोजन की थाली सामने लगा जाता, पानी रख देता। वे रोटी का निवाला मुँह में रखते हुए चौंक पड़ते। यह सच है कि वे बेटी सरोज और गृहस्थी की अन्य चिंताओं से घिरे हुए हैं। वे बेटी को लिवाने उसके ससुराल हजारीबाग गए थे। परंतु वहाँ जाकर कोई लाभ नहीं हुआ। समधीजी सरोज को विदा करने के लिए कतई राजी न हुए। सरोज की शादी को साल भर से ऊपर हुआ है। गर्भ ठहरने से उसकी तबियत जरा नाजुक रहती है। फिर उसके चचेरे देवर का विवाह भी है। उसके ससुराल वाले उसे मायके नहीं भेजना चाहते हैं जबकि वह जाना चाहती है।

समधियाने में यूँ तो बटुकनाथ की खूब खातिर तवज्जो हुई लेकिन समधी अपनी बात पर अडिग रहे। बटुकनाथ स्वयं बेटी को लिवाने चले गए थे फिर भी उन्हें अकेले लौटना पड़ा। उनकी बात का मान नहीं रखा गया इस बात से वे मन ही मन रुष्ट हैं। उनकी पत्नी एक अरसे से बेटी से मिलने की आस लगाए बैठी हैं। उन्हें वे क्या जवाब देंगे? खैर, उन्होंने पत्नी को हालात से अवगत कराते हुए एक पत्र डाल दिया है। वे मन

में निराश हैं। जब सरोज अभी न आ सकी तो फिर कब आएगी? उसे दिन चढ़ते जाएँगे और वे लोग उसे आने न देंगे, ठीक ही तो! सरोज की सास ने पहले ही शैलकुमारी से कह दिया है कि सरोज की प्रसूति उनके यहाँ होगी। इसके मायने यह हैं कि बच्चे की छठ्ठी, गहना और उनके घर भर के लोगों के लिए नए कपड़े मायके से साजे जाएँगे। यह अलग चिंता का विषय है। आखिर इस लेन-देन के खर्च के लिए रुपयों का बंदोबस्त करना होगा। साल भर पहले ही हुए बेटी के विवाह में वे पहले ही अपने बूते से बाहर खर्च कर चुके हैं। अबकी फसल पर भी बुरी बीती है।

फिर अखिलेश की पढ़ाई का खर्च है। उनकी नौकरी में ऊपरी आमदनी की गुंजाइश नहीं। इस एक साल में वे छोटी सी पूँजी भी नहीं जमा कर पाए हैं। इन दिनों गृहस्थी की चादर यूँ ओछी पड़ती जाती है कि सिर ढाँपो तो टाँगें नंगीं, टाँगें ढाँपो तो छाती उघड़ जाए। उकड़ूँ पड़े रहने के अलावा कोई चारा नहीं। बटुकनाथ की सेहत गिर गई है। उनके बालों में सफेदी बढ़ आई है। नीलप्रभा की तसवीर धूमिल पड़ रही है। वह उनके चिंतित मन में नवचेतना नहीं जगाती। आखिर चौथा शनिवार आता इस से पहले ही मौसमी बुखार ने बटुकनाथ को धर दबोचा। वे पूरे चार दिन तक कमरे में अपने पलंग पर पड़े हुए बुखार में जलते-बुझते रहे। मित्रगण आए, डॉक्टर को बुलाया गया... उन्हें दवाइयाँ और पथ्य खिलाए गए। मित्रों ने पास बैठ कर उनका दिल बहलाया और नौकर ने खूब सेवा-टहल की। लोगों के लाख मना करने के बावजूद, सोमवार की सुबह वे जीर्ण अवस्था में ही तैयार हो कर अपने दफ्तर जा पहुँचे। दरअसल वे उस कमरे से अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं। कमरा उन्हें काटने दौड़ता है। राम-राम करते हुए यह हफ्ता गुजर गया।

बटुकनाथ का टाँगा जैसे ही छंगुलाल हलवाई की दुकान के पास वाली गली में रुका, उनकी नजर अपनी हवेली के गँवाए हुए हिस्से के द्वार पर पड़ी। वहाँ हा-हाकार मचा है। नीलप्रभा पैरों में चप्पलें डाले, घर की मुचड़ी हुई धोती पहने ही कहीं चल पड़ने को बेताब हैं। उनकी बाँहों में नन्हा मोनू चीखता हुआ छटपटा रहा है। उसकी हृदयविदारक चीखें बाजार तक गूँज रही हैं। उसकी एक बाँह निष्प्राण झूल रही है। मालूम पड़ता है वह कहीं से गिरा है और उसकी बाँह की हड्डी कंधे से उतर गई है। वहाँ आस-पास के लोग जुट गए हैं। शैलकुमारी और शंकर तड़पते हुए मोनू को सँभालने में

नीलप्रभा की मदद कर रहे हैं। वह बच्चा दर्द से बेहाल है। उसके पिता को बुलवाने का वक्त नहीं।

यही उचित है कि बच्चे को फौरन डॉक्टर के पास ले जाया जाए। बटुकनाथ को माजरा भाँपते देर न लगी। वे जिस ताँगे पर आए थे उन्होंने उसी ताँगेवाले को रोक लिया। लोगों ने मिल कर नीलप्रभा और छटपटाते हुए मोनू को सहारा दे कर ताँगे पर बिठाया। बटुकनाथ ने शंकर को घर पर रहने की हिदायत दी और पत्नी को नीलप्रभा के घर उनकी सास माँओं का खयाल रखने के लिए भेज दिया। वे खुद ताँगे पर जा बैठे। उन्होंने ताँगे वाले से कहा, "सिविल अस्पताल!" चीखते-बिलखते बच्चे से घबरा कर ताँगे वाले ने घोड़े को कस कर एड़ लगाई। टाँगा बाजार की सड़क पर बचता-बचाता सरपट भागने लगा। इधर अपनी देह पटकता मोनू नीलप्रभा से सँभाले नहीं सँभल रहा। उधर बटुकनाथ दूर छिटके, ताँगे की कमानी से चिपके हुए बैठे हैं। नीलप्रभा की सहायता करने का उनमें साहस नहीं। टाँगा घर से काफी दूर निकल आया है और अब वे अटपटा सा महसूस कर रहे हैं।

मौके के जोश में आ कर उन्होंने खुद को किस मुसीबत में डाल दिया। किसी और को भी साथ भेज सकते थे? लेकिन जब उनकी नजर नीलप्रभा के आँसू से भीगे चेहरे पर पड़ी तो उन्होंने खुद को फटकारा कि कहाँ यह मुसीबत की मारी रो रही है और कहाँ वे अपनी टुच्ची सोच से घिरे बैठे हैं। टाँगा सिविल अस्पताल के सामने रुका। बटुकनाथ अपनी उलझन भूल गए। उन्होंने नीचे उतर कर ताँगेवाले को ठहरने का निर्देश दिया। उन्होंने मोनू को गोद में ले कर उतारना चाहा लेकिन वह चीख मार कर अपनी माँ के सीने से चिपक गया। किसी तरह नीलप्रभा मोनू को लिए-दिए स्वयं नीचे उतरीं। बटुकनाथ फुर्तीले कदमों से अस्पताल के भीतर गए और मरीज का नंबर 'इमरजेन्सी' में लिखवाया। मोनू को फौरन हड्डियों के डॉक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने बच्चे का मुआयना किया और उसकी माँ से ढाँढ़स भरे बोल बोले। डॉक्टर ने नर्स की मदद से बच्चे की उतरी हुई हड्डी सही जगह बिठा दी। नर्स ने एहतियात के लिए मोनू के कंधे पर मामूली सा प्लास्टर चढ़ा दिया। भयभीत मोनू की रोते-रोते घिग्घी बँध गई है। जैसे ही नर्स ने उसे दर्द का इंजेक्शन दिया वह अपनी बची हुई शक्ति बटोर कर चिल्लाया। बटुकनाथ ने डॉक्टर से कुछ बातचीत की फिर वे बाहर निकल आए।

नीलप्रभा रोते हुए मोनू को कंधे पर लादे उनके पीछे हो ली। इस बार टाँगा चढ़ने के वक्त बटुकनाथ को नीलप्रभा की मदद करनी पड़ी। ताँगे पर बैठते ही नीलप्रभा ने मोनू को अपनी गोद में अच्छी तरह लिटाया और उसके मुँह पर अपना आँचल डाल दिया। माँ की ममता का सान्निध्य पाते ही बच्चे की उखड़ी-उखड़ी साँसें सम पर आने लगीं। वह दूध पीते हुए रह-रह कर सिसक उठता फिर न जाने कब उसकी साँसें गहरी चलने लगीं। वह सो गया।

गया शहर की सड़कें सँकरी हैं। तिस पर उनके दोनों तरफ बादलों की तरह उमड़ती-घुमड़ती दुकानें। इस के बाद भी कोई कसर न छूटे, तो बीच सड़क पर बजाप्ते बैंड-पार्टी के साथ नाचते बाराती, पीछे सजीली घोड़ी पर सवार दूल्हा...। ताँगे वाले ने घोड़े की लगाम खींच कर टाँगा एक किनारे खड़ा कर दिया। रास्ता न पा कर राहगीर वहीं रुक कर बारात का नजारा लेने में तल्लीन हो गए हैं। ताँगे पर बैठी सवारियों को देख कर, मौजूद भीड़ में से किसी मनचले ने अपने साथी को मुखातिब होते हुए ऊँची आवाज में फिकरा कसा, "देख रे, क्या कलयुग आया है। हम-तुम जवानी में बंडे घूम रहे हैं और बाबूजी बुढ़ौती में मेहरारू की गोद में बच्चा खेला रहे हैं।" - हँसी का स्वर! यह बेहूदा वाक्-बाण बटुकनाथ को पानी-पानी कर गया।

वह नजरें न उठा सके। उनके करीब कोई हरकत हुई... नीलप्रभा की कलाइयों में पड़ी चूड़ियाँ "झन्न" से बजीं, मानो रोष में। उन्होंने अपना आँचल ठीक किया फिर बिना कुछ कहे-सुने नींद में बेसुध मोनू को खींच कर बटुकनाथ की गोद में सुला दिया। बटुकनाथ हक्के-बक्के रह गए। नीलप्रभा ने साधिकार अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उनकी आँखों में डाल दीं - पहली बार। उन्होंने अपनी साड़ी ठीक की और जरा फैल कर आराम से बैठ गईं। फिर पूरे इत्मीनान से उन्होंने भीड़ को निहारा, मानो कूड़ा-करकट बुहारा। बटुकनाथ मन में सँभले और सोचा, 'ठीक ही तो! यदि यह उनका परिवार होता तो लाख फिकरों पर भी क्या वे यूँ लज्जित होते?" उन्होंने अपनी गोद में सोए पड़े बालक को नजर भर देखा। उसके शरीर में माँ की गोद में सोए होने की गर्माहट थी। गुलाबी होंठों पर दूध की नमी थी। ...बटुकनाथ का जी कैसा तो हो गया।

ताँगा जब हवेली वाली गली में रुका तब अँधेरा घिर रहा था। नीलप्रभा मोनू को उठाए अपने हिस्से की हवेली में चली गईं। वहाँ शैलकुमारी ने उनका स्वागत किया। उन्होंने

नींद से जागते-कुनमुनाते मोनू को दुलारा और अस्पताल का किस्सा पूछने लगीं। बटुकनाथ ने ताँगे वाले का भाड़ा चुकाया। शंकर ने उनका सफरी बैग उठा लिया और वे शंकर के पीछे-पीछे हवेली में चले गए। उन पर मानो दिन भर की थकान हरहरा कर टूटी। उन्होंने गुसल किया, कपड़े बदले और अपने पलंग पर लेट गए।

हमेशा की तरह शंकर तिपाई पर नमकीन और मिठाई का नाश्ता रख गया। बटुकनाथ ने उसे टोका, "मिठाई नहीं चाहिए। इसे उठा ले जाओ।" वे उठे और उन्होंने कमरे का किवाड़ भिड़ा दिया। उन्होंने बैग से एक नई बोतल निकाली और नमकीन की प्लेट में चना-चबेना मिलाया। पूरी शाम वे अकेले अपने पलंग पर अधलेटे-बैठे से पीते रहे। बीच में दो-चार बार शैलकुमारी का कमरे में आना हुआ। बटुकनाथ ने संक्षेप में दोनों बच्चों, सरोज और अखिलेश के हाल-समाचार उन्हें सुना दिए। शैल ने थके-हारे पति को अधिक दिक करना मुनासिब न समझा। लेकिन जब इंतजार करते हुए रात के दस बज गए तब उन्होंने बिना कुछ पूछे शंकर को कमरे में खाना लगाने का आदेश दे दिया। बटुकनाथ को होश नहीं कि उन्होंने रात क्या खाया, कितना खाया, खाया भी है या नहीं। वे गहरे नशे में लंबी नींद सोए और अगले दिन, दिन चढ़ने तक सोते रहे।

रविवार की सुबह आँगन में धूप खिली है। जब सूरज तेज हुआ तब बटुकनाथ की आँखें खुलीं, इस सुखद एहसास के साथ कि वे अपने घर में, अपने बिस्तर में पड़े हैं। उनका पोर-पोर आराम में डूबा हुआ है। उन्होंने पत्नी से नाश्ते की अनिच्छा जाहिर की। फिर भी जब वे स्नान कर के निकले तो उन्होंने अपनी मेज पर दूध और फलाहार रखे हुए पाए। फलाहार लेते हुए वे अखबार पढ़ने लगे। जब अखबार में पढ़ने को कुछ न बचा तब वे उठ कर अपनी लिखने की मेज पर जा बैठे। आज जब से वे जागे हैं तभी से उनके मन में लिखने के आसार बन रहे हैं। वे शीघ्र ही सामाजिक विषयों पर अपनी एक निबंधमाला प्रकाशित करना चाहते हैं। उसी की श्रृंखला की रचना करने वे बैठ गए। लिखते समय वे अपनी सुध-बुध बिसरा बैठते हैं। वे घंटों अपने रक्त को स्याही में घोल कर कागज पर निर्बाध उँडेलते रहते हैं। उनके विचार शब्दों में मूर्त हो कर सजीव हो उठते हैं। मानो कोई सामने खड़ा हुआ बोल रहा हो।

शंकर को आज मरने की भी फुर्सत नहीं है। रविवार के दिन मालकिन उस से विशेष मजदूरी-मशक्कत वाले काम करवाती हैं। वह भी अपनी चौकस निगरानी में।

दरअसल यह छुट्टी वाला दिन है सो मुहल्ले के सारे मर्द और बच्चे घर पर रहते हैं। आज औरतें अपने परिवारों के पीछे व्यस्त रहती हैं। इसलिए मुहल्ले के मंदिर में रविवार के दिन कथा-कीर्तन-सत्संग वगैरह आयोजित नहीं किए जाते। भक्तिनों को भगवान के लिए अवकाश नहीं। यह कार्यक्रम शनिवार के दिन रखे जाते हैं। शैलकुमारी को रविवार का दिन काटने दौड़ता है। दोनों बच्चे बाहर चले गए हैं। इधर कई हफ्तों से बटुकनाथ भी घर पर नहीं रह रहे थे। जो रहें भी तो शैल के लिए न के बराबर, इस कदर पढ़ने-लिखने में लीन रहते हैं! न छुट्टी के दिन वह किसी सहेली के यहाँ जा कर बैठ सकती हैं न कोई उनके यहाँ आती है। बचा गरीब शंकर - सो वे उसे अतिरिक्त काम में उलझाए रखती हैं और उसके बहाने खुद भी उलझी रहती हैं।

काम का काम निकल आता है और पहाड़ जैसा दिन भी कट जाता है। आज जैसे ही सुबह के नाश्ते के बाद शंकर को फुर्सत मिली, शैलकुमारी ने उसे कोठे के छज्जे पर चढ़वा दिया। छज्जे पर 'भतुआ' की फैली हुई लत्तर में लगे फल कई दिनों से तैयार पड़े, अपने तोड़े जाने का इंतजार कर रहे हैं। शंकर ने तीन सुफेद, वृहदकाय भतुआ तोड़े। उसने लत्तर काट कर साफ की और उसे पिछवाड़े की खाली जमीन पर फेंका। शैल कुमारी ने हिसाब लगाया। थोड़ा सा भतुआ वे 'अदौरी' बड़ियाँ में डालने के लिए रख देंगी। डेढ़ भतुआ का वे मुहल्ला में 'बैना' बाँट देंगी। एक पूरे भतुआ की मिठाई बनेगी। नीलप्रभा ने उनसे वादा किया है कि वे उनके लिए भतुआ का पेठा बना देंगी। ...मालकिन के आदेश पर शंकर छत के कमरे की सफाई करने में भिड़ गया है। उसने पुरानी धोती पर पिछले साल की बड़ियाँ फैला कर सजाईं और उन्हें धूप दिखाया। नाना प्रकार के अचार के मर्तबानों को झाड़ा-पोंछा। 'ताखे' की सफाई की और मर्तबानों को वापिस उनकी जगह पर रखा। यह काम करते हुए उसके हाथ से मीठे अचार का मर्तबान फिसल कर गिरा। फर्श पर अचार और फूटे हुए काँच के टुकड़े जा मिले। मालकिन ने शंकर को इस बेशऊरी के लिए खूब डाँटा... ऊपर से बेचारे का काम बढ़ा सो अलग!

शंकर मुँह फुलाए, भुनभुनाया हुआ सा आँगन में चाँपाकल के पास जमी हुई काई को नारियल की छांई और चूल्हे की राख की मदद से घिस कर साफ कर रहा है। खाने का वक्त होता देख कर शैलकुमारी स्वयं रसोईघर में जा घुसी हैं ताकि दोपहर के भोजन

में देर न हो जाए। एक चूल्हे पर दाल चढ़ी है और दूजे पर भात डबक रहा है। वे रसोईघर के द्वार में मचिया पर बैठीं 'चिलोही' से धीरे-धीरे कद्दू की महीन फाँकें काट रही हैं। उनकी निगाहें शंकर पर बनी हुई हैं। वे उसके काम का मुआयना कर रही हैं। उनकी जुबान से अनवरत निर्देश जारी हैं - "देख! नाली की तरफ... हाँ, वहाँ काई छूट रही है। बढ़िया से घिस तो जरा!..." नीलप्रभा ने आँगन के भिड़े दरवाजे को पैरों से धक्का दे कर प्रवेश किया। शैलकुमारी ने दाल उतार कर कड़ाही में सब्जी छौंक दी। रसोई के कपड़े से भात की हंडिया उतारते हुए उन्होंने नीलप्रभा से पूछा, "यह क्या लिए चली आ रही हैं आप?" नीलप्रभा ने अपने हाथों में एक बड़ी सी थाल उठाई हुई थी जो एक औंधी तश्तरी से ढँकी थी। उन्होंने मुस्कुराते हुए तश्तरी परे हटाई और शैलकुमारी को खुली थाल दिखाई। जिसे देखते ही उनके मुँह से निकला, "छप्पन भोग?" और वे हँस दीं।

थाल में गरमागरम भात, कटोरियों में दाल, कढ़ी-बरी, पालक का साग, आलू का चोखा, टमाटर की चटनी और तले हुए पापड़ और 'तिलौरियाँ' सजे हुए हैं। इतना ही नहीं, एक कोने में दो माल पुए एक पर एक रखे हैं। नीलप्रभा सहज मन से बोलीं, "मेरा बड़ा दिल हुआ कि आज बाबूजी को मैं खाना खिलाऊँ।" शैल कुमारी यह सुन कर खुश हुईं। हँस कर बोलीं, "ये कल आपके मददगार क्या हुए कि लगता है आज सारा दिन आपने चौके में बिता दिया। जरा देखिए, कद्दू की तरकारी तैयार हो गई होगी। थोड़ी सी वह भी अपनी थाल में लगा दें। ...और मोनू कैसा है?" - "खेल रहा है।" नीलप्रभा ने कहा। शैलकुमारी ने आग्रह किया, "भीतर चले जाइए न! इतने शौक से भोजन बना कर लाई हैं आप, अपने बाबूजी को स्वयं खिला आएँ। यहाँ मेरे हाथ लगे हुए हैं। भात का माँड़ फौरन न पसाया तो सारा भात गीला हो जाएगा। शंकर को देख ही रही हैं, कैसा भूत बना हुआ है। बिना स्नान के इसे भीतर न घुसने दूँगी।" नीलप्रभा ने कहा, "दीदी, विनोद ट्यूशन गया है। इसलिए मुझे यह सब अकेले ही लाना पड़ा। आपकी थाल भी सजा कर रखी है। पहले मैं वह ले आऊँ..." शैल ने उनकी बात काटी, "अरे, जाइए न! पहले इन्हें खिला आइए, मेरी मदद ही करेंगी आप! मुझे खाना खाने में बहुत देर है। पहले मैं यहाँ के बिखरे काम समेट लूँ।" अंधा क्या चाहता है? - दो आँखें। नीलप्रभा मुड़ी और यूँ धड़कते दिल से आँगन पार किया मानो डरती हों कि कहीं कोई उनकी राह न रोक ले।

बटुकनाथ ने जब अपने कमरे के दरवाजे पर नीलप्रभा को थाल लिए खड़ा देखा तो वे अचकचा कर कुर्सी छोड़ खड़े हो गए। उनके दिमाग को पाला मार गया। वे तय नहीं कर पा रहे हैं कि क्या कहें, क्या करें? उनकी उलझन आसान करने के लिए नीलप्रभा ही बोलीं, "आज मैं आपके लिए खाना लाई हूँ। आइए..." इतना कह कर वे तिपाई की ओर बढ़ीं और उस पर थाल सजाने लगीं। फिर वे कमरे के कोने में रखी सुराही पर झुकीं और बटुकनाथ के निजी गिलास में उनके लिए पानी ढालने लगीं। यह सब करते हुए बटुकनाथ उन्हें अपलक देख रहे थे। क्या हो जो वे उनकी कलाई पकड़ लें और गिलास का पानी धरती पर ढल जाए? ...वे जो आँचल ओढ़ी हुई हैं वह भीग जाए? वे जिद कर के उनसे पूछें कि वे कल उनके लिए खाना क्यों न लाईं? क्या उन्हें मालूम है उनसे रूठ कर वे कल सारी रात शराब पीते रहे? - नीलप्रभा ने पानी का गिलास तिपाई पर रखा। ठनक की आवाज हुई और बटुकनाथ के होश लौटे। वे अपने बहके खयालों पर मन ही मन लज्जित हुए। नीलप्रभा दरवाजे की चौखट से पीठ टिका कर खड़ी हो गईं। इस वक्त बिजली थी और छत से लटका पंखा बड़े मजे से चल रहा था। भोजन खिलाने वाली के पास पंखा झलने का बहाना भी नहीं था। फिर भी वे वहाँ खड़ी थीं। बटुकनाथ ने पूछा, "मोनू कैसा है?" - "अब अच्छा है।" बटुकनाथ खाना खाते रहे। नीलप्रभा का उनसे परदा न करना उन्हें बहुत अच्छा लग रहा है।

वे अपनी लगती हैं। दोनों को वादों की जरूरत नहीं। बटुकनाथ के मन में एक खिलंदड़ा सवाल आया, 'ये खाने में क्या मिला के खिलाती हैं मुझे?' उनके मन ने उत्तर दिया, 'प्रेम।' हड़बड़ी में उनके मुँह से सच में यह सवाल निकल गया, "आप खाने में क्या मिला देती हैं... जादू-टोना?" नीलप्रभा बुरी तरह चौंक पड़ीं, "ऐं?" फिर सँभल कर पूछा, "भला मैं ऐसा क्यूँ करने लगी?" बटुकनाथ को उनका चौंकना बड़ा भला लगा। वे झूठ-मूठ की गंभीरता ओढ़ते हुए बोले, "मेरी पूरी हवेली अपने नाम लिखवाने के लिए?" ...और हँस पड़े। नीलप्रभा खिलखिला पड़ीं। पूछती हैं, "अच्छा? जो मैं माँग ही लूँ तो आप दे न देंगे?" बटुकनाथ सिहर गए, 'हे ईश्वर! तो क्या यह जानती हैं कि इनके सामने पड़ते ही मैं भेड़ हो जाता हूँ?' वे थोड़ा तन कर बैठ गए और बड़ी सावधानी से मानो खूब सोच-समझ कर एक-एक ग्रास खाने लगे। कुछ देर की चुप्पी के बाद उन्होंने संजीदगी से पूछा, "आप क्या पढ़ती हैं?" नीलप्रभा ने तपाक से उत्तर दिया, "आपकी किताबें।" यह उनका गुमान था या वाकई नीलप्रभा ने 'आपकी' शब्द पर जोर

दिया था? बटुकनाथ ने पूछा, "आपके प्रिय लेखक कौन हैं?" - "रवींद्रनाथ, शरतचंद्र, रेणु, ...आप भी तो!" बटुकनाथ ने टोका, "अरे! मेरी क्या गिनती?" नीलप्रभा मासूमियत से बोलीं, "क्यों? आपके इतने सारे लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं, कुछ कहानियाँ और कविताएँ भी। मैंने वे सब पढ़े हैं। जब आप यहाँ नहीं रहते तब मैं रोज आती हूँ और आपकी कोई न कोई किताब या पत्रिका ले जाती हूँ पढ़ने के लिए।" - "आपको पढ़ना बहुत पसंद है?" - "पढ़ना मेरे प्राण हैं। जब पुस्तकें न थीं तब मैं निष्प्राण थी। उनके बगैर मेरा जीवन क्या है? यह चारदीवारी... दो अपाहिज बुजुर्गों की सेवा करना, चार वक्त भोजन तैयार करना, सफाई-धुलाई, बच्चों को पालना, पति की आज्ञा का पालन करना, उनकी जरूरतों का खयाल रखना, चारों पहर घर की चौकीदारी करना, न कहीं आना-जाना, न किसी से मिलना-जुलना, सबकी सुनना अपनी कभी न कहना...।

बाबूजी, यह वह काल कोठरी है जहाँ हमेशा आँखों के आगे अँधेरा छाया रहता है। यदि पुकारो भी तो अपनी आवाज अपने ही कानों तक नहीं पहुँचती। आपकी किताबों ने इस कोठरी की छत में एक नन्हा सुराख बना दिया है। बस, किताबें मुझे मेरे हिस्से का सुराख भर आसमान देती हैं। इस सुराख से मैं चींटी की तरह रेंग कर बाहर निकलती हूँ। चींटी जैसी, ताजी हवा की नन्हीं साँसें भरती हूँ, चींटी ही जैसी नन्हीं किंतु तड़पाने वाली अपनी भूख मिटाती हूँ। इस तरह मैं एक और दिन के लिए जी उठती हूँ... रोज!" यूँ बोलते हुए नीलप्रभा ने देखा कि बटुकनाथ उन्हें बहुत गौर से देख-सुन रहे हैं। तब वे अनायास चुप हो गईं। बटुकनाथ सोच में पड़ गए कि वह क्या कहें? उन्होंने निःश्वास छोड़ा। माहौल भारी हो आया था, उन्होंने उसे हल्का करने की गरज से कहा, "लेकिन आप मेरी किताबें चोरी से पढ़ती हैं, मेरी अनुमति के बगैर।" नीलप्रभा कुछ परेशान हो कर बोलीं, "लेकिन... लेकिन दीदी ने तो मुझे अनुमति दे दी है। वे कहती हैं, मैं जब चाहूँ, जो चाहूँ पढ़ने के लिए ले जाया करूँ।" - "हम्मss...।" नीलप्रभा ने मचल कर पूछा, "जो मैं आपसे आपकी किताबें माँग ही लूँ तो आप क्या दे न देंगे?" बटुकनाथ ने तपाक से उत्तर दिया, "हाँ-हाँ! बिल्कुल। क्यों नहीं? ...वह तो मैं यूँ ही हँसी कर रहा था।" नेपथ्य में देर तक किसी खोए हुए मेमने की में-में गूँजती रही।

बटुकनाथ ने नीलप्रभा से आग्रह करते हुए कहा, "आप मेरी उपस्थिति में भी अवश्य किताबें ले जाया करें। पढ़ने में लिहाज कैसा? मैं खुद आपके लिए अच्छी किताबें निकाल दिया करूँगा। अपनी पसंद आपके साथ साझा कर, मैं स्वयं को भाग्यशाली समझूँगा।" नीलप्रभा उन्हें टुकुर-टुकुर देखते रही, न जाने उन्हें उनकी बात का यकीन हुआ या नहीं। फिर पूछ बैठीं, "आपको मेरे हाथ का खाना कैसा लगता है?" बटुकनाथ खाना खा चुकने के बाद आचमन कर रहे थे। उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने आज तक उनके खाने की न तो तारीफ की है, न ही उन्हें शुक्रिया के दो बोल कभी बोले हैं। सच ही तो, इससे पहले कभी मौका ही न मिला! कहाँ से तो उनमें लड़कपन समा आया, भोले बन कर पूछने लगे, "आप नहीं जानतीं? यदि नहीं जानती हैं तो खाना खिलाने क्यों आईं?" नीलप्रभा बेजुबान हो गईं। वे शर्म से गड़ीं जूठे बर्तन समेटते हुए वहाँ से जाने को हुईं। बटुकनाथ ने शरारत से पीछे से पुकारा, "बताऊँ?" नीलप्रभा ने जोर से "ना" कही और कमरे से बाहर भागीं। रसोईघर में वे यूँ प्रविष्ट हुईं मानो किसी धक्के के लगने से खुद को गिरने से बचाते हुए सँभलते चली आ रही हों। वहाँ कोई न था।

शैलकुमारी की आवाज बाहर बरामदे से आती प्रतीत हुई। नीलप्रभा बाहर चली गईं। वहाँ धोबी आया हुआ था और शैलकुमारी उसका पिछला हिसाब जोड़ रही थीं। नीलप्रभा धोबी की तरफ इशारा कर उनसे उन्मुख हुईं, "दीदी, आप इससे निबटिये जब तक मैं आपका खाना ले आती हूँ। मैं अपनी थाल भी यहीं लिए आती हूँ। हम दोनों साथ खाना खाएँगे।" शंकर कुँए पर नहाने के बाद अपने कपड़े धो रहा था। उसे देख, नीलप्रभा ने शैल कुमारी को याद दिलाया, "शंकर खा-पी ले तो इससे कह कर भतुआ छिलवा कर, टुकड़ों में कटवा कर रखवा दीजिएगा। वे टुकड़े रात भर फिटकरी के पानी में भीगेंगे। कल भोर, मैं पहला काम करूँगी कि उनका पेठा बनाऊँगी।" - उस दोपहर दोनों स्त्रियों ने बड़े बहनापे से संग भोजन किया। दूसरी सुबह जब बटुकनाथ जमुई के लिए रवाना हुए तब उनके सामान में एक मर्तबान पेठों का रखा था। ऐ काश, ऐसी कोई जुगत होती कि वे बारंबार मिठाई खाते और वह मर्तबान में बची भी रहती!

"धब्ब-धब्ब्... धब्ब्-धब्ब! ...छपाक! ...छप्-छप्प...!" नीलप्रभा घर भर के कपड़े धोती जाती हैं। हर सुबह उनके सामने मैले कपड़ों का पहाड़ खड़ा होता है, पानी के रेले छूटते हैं...। वे अपनी मजबूत टाँगों से उस पहाड़ पर चढ़-चढ़ कर उसे रौंदती, चीरतीं, घिसतीं,

फींचतीं-खँगालती...हैं। जब वे अय्याजी के मैले से भर आए बिछौने को धोतीं तब वे अपने आँचल को मुँह और नाक पर कस कर लपेट लेतीं। बदबू से उनका सिर चकराता। आँचल से बँधे हुए मुँह में उबकाई भर आती जिसे वह विवश हो कर भीतर घूँटतीं। फिर भी अपने हाथों को 'छू' जाने से बचाने का भरसक प्रयास करतीं। कभी सुकुमार रही उनकी हथेलियाँ अब कठोर हो चली हैं। इन्हीं हाथों से वे आटा गूँधतीं, इन्हीं उँगलियों से ग्रास बना कर अपने बच्चों के मुँह में देतीं और आप मुँह में रखतीं हैं। नीलप्रभा के लिए 'बचना' मुमकिन नहीं। दाई-नौकर का सुख उनके भाग्य में नहीं बदा। जिसे भी नौकरी पर रखा जाता है वही सिर पर पैर रख कर भागता है। कपड़े धोने के लिए कोई राजी नहीं होता। अन्य कामों के लिए रखे नौकर अय्याजी और अम्माजी की जुगल-बंदी से आतंकित हो कर जल्द ही भाग खड़े होते हैं। अम्माजी बिस्तर से कम ही उतरती हैं। यदि कोई चाकरी पर आ जाए तो उससे घर के काम छुड़वा कर सारा-सारा दिन अपनी दुखती टाँगों को दबवातीं और मालिश करवाती हैं।

अपनी टाँगों पर वे शौचालय आ-जा लेती हैं। उनकी टाँगें निकृष्ट हो रही हैं, उनकी जुबान नहीं। वह पूरी दुनिया नाप लेती है।उनके अनवरत कटु-वचन कौन सहेगा, सिवाय नीलप्रभा के? मनोहरलाल मानते हैं उनका घर 'औरताना' है। यानी घर जनाने-मर्दाने होते हैं। जनाने घरों में मर्दों का हस्तक्षेप मूर्खता है। शुरुआत में जब भी नीलप्रभा ने पति से अपनी मुश्किलें बयान करने की कोशिशें की, बुरी से बुरी झिड़कियाँ खायीं। मनोहरलाल ने कभी उनका दिल रखने के लिए भी उनकी बातें न सुनी। घर के हालात से वे वाकिफ हैं। लेकिन आज जो ढील दे दें तो कल पछताना पड़ेगा। इसलिए नीलप्रभा के कुछ कहते ही बरस पड़ते, "सास हैं तुम्हारी! गृहस्थी का शऊर सिखाएँगी ही। कभी उनका शारीरिक कष्ट भी देख लिया करो? मेरी माँ की मुझसे ही शिकायत करने की तुम्हें हिम्मत कैसे पड़ जाती है?..." - यह पहले बहुत होता था। अब कम होता है। नीलप्रभा ने गूँगापन अख्तियार कर लिया है, खुद को खुद में कैद कर लिया है। पहले रूठना चाहतीं तो कोई मनाता नहीं। मनोहरलाल को सिनेमाई चोंचले नहीं पसंद। वे सारा दिन खट कर परिवार को खिलाएँ फिर अपने अधिकार के लिए गिड़गिड़ाएँ? उन्हें काम से काम! वे 'मौग' नहीं जो चिरौरियाँ करें। - इससे विपरीत, जिस दिन अम्माजी बेटे से बहू की शिकायत लगा दें वह कयामत का दिन होता। उस दिन नीलप्रभा का 'इनसाफ' होता। मनोहरलाल जनाने घर में मर्द की

मौजूदगी दिखलाते, कड़कते, "औरताना घर समझ लिया है? इस घर का मालिक मैं हूँ। यह सब करना है (वह तब जो भी रहा हो) तो अपने मायके जा कर रहो...।" मायके पर आ कर मसला टूट जाता। भला मायके कौन जाना चाहती है? वहाँ क्या धरा है! यहाँ मन की नहीं, उसके तन की तो कद्र है। वहाँ वह न मन की है न तन की। वजूद गँवा देने से अच्छा है कि उनके लिए वह धन-धान्य परिपूर्ण, पूतों वाली बनी रहे। कुछ भ्रम भी जरूरी होते हैं। इस तरह नीलप्रभा बहरी और गूँगी होती चली गई।

...जब पड़ोस में नीलप्रभा ने पहले-पहले किताबें देखीं, वह एक-दो नहीं, किताबों का पूरा संसार था। काँच की दो विशाल अलमारियों में पैर से ले कर चोटी तक सजी हुई एक रहस्यमयी दुनिया। जब उनका आपसी परिचय नया था तब नीलप्रभा को शैलकुमारी से किताबें माँगने में थोड़ी झिझक महसूस होती। फिर धीरे-धीरे वे सहज हो गईं और फिर क्या था, वे एक किताब लौटातीं तो दूसरी ले कर जातीं। उन्हें पढ़ने की लत लग गई। कोल्हू के ढर्रे पर चल रहे पाशविक जीवन में रंगीन चलचित्र से सपने सजने लगे। अब वे ज्यादा से ज्यादा फुर्ती और उल्लास से अपने काम निबटातीं ताकि अपनी दिनचर्या से कुछ वक्त अपने लिए चुरा सकें। घर के बड़ों और बच्चों को दोपहर में खिला-पिला कर सुला देतीं और अपने बिस्तर पर कोई किताब लिए औंधे पेट जा पड़तीं। ...खिड़की पर बैठी गौरैया चिहुँक कर उड़ जाती, दोपहर की तपिश से बेपरवाह वह आसमान में लंबीऽऽ...उड़ानें भरती। नीलप्रभा ने छुटपन से पिताजी को भाइयों से कहते सुना है कि पढ़ोगे तो आई.ए.एस. बनोगे। वे भी यह जो आई.ए.एस. चीज है, वह बनना चाहतीं। लेकिन जहाँ भाइयों ने कॉलेज तक पढ़ाई की, उनकी पढ़ाई नवमी के बाद ही छुड़ा दी गई।

हालाँकि आई.ए.एस. का पूरा नाम वे आज भी नहीं जानती हैं। परंतु ख्वाब क्या हकीकत के मोहताज होते हैं? वे तो मुँह उठाए घुसे चले आते हैं सीने में, कहीं भीतर बहुत नीचे और गहरे पैठ जाने के लिए। उम्र बीतने पर जब फिर पढ़ना हासिल हुआ है तो नशा चढ़ा ही जाता है जैसे हवा का दबाव कम होने पर तूफान घिरते हैं। नीलप्रभा किस्से-कहानियों के पात्रों के मार्फत कई-कई जीवन जीती है... रंग भरे स्पंदित जीवन। वे प्रेम करती हैं, प्रेम पाती हैं। इतना ही नहीं, कभी नफरत करती हैं और कभी न्याय भी। किताबों के जरिये वे हर वह एहसास को महसूस कर पाती हैं जो व्यक्ति

को मनुष्य बनाता है और जीवन को जीवन। उनके मानस-पटल पर जीवन और साहित्य के मध्य साम्य और विलोम का हिसाब अनवरत चलते रहता है। मानो एक कैलक्यूलेटर है, जहाँ जीवन के जोड़े को साहित्य घटा देता है और साहित्य के गुणाकार को जीवन भागाकार कर देता है। दोनों में उचक-निचक का यह परस्पर खेल चलता रहता है।

नीलप्रभा के मन में बचपन की स्मृतियाँ हैं ठीक वैसे ही जैसे हर किसी के मन में होती हैं। ...उनके घर पर एक नवयुवती महरी आया करती थी। उसका नाम था, कुसुम। उनकी आँखों के सामने आज भी कुसुम का चेहरा साफ है। आज उन्हें लगता है कि वह बहुत ही मामूली शक्ल-रंग की युवती थी। लेकिन चार वर्ष की आयु में वह उन्हें संसार की सबसे रूपवान स्त्री लगा करती। नन्हीं नीलू कुसुम की हर अदा की दीवानी थी। कुसुम का दो चोटियाँ गुँथ कर काम पर आना नीलू को बहुत भला लगता। वह दाएँ हाथ में झाड़ू पकड़ कर कचरा बुहारा करती जबकि उसका बायाँ हाथ पीठ पर मुड़ा होता।

उसकी दाहिनी चोटी अक्सर आगे झूल जाया करती और बाईं वाली उसकी झुकी पीठ पर यूँ चिपकी रहती मानो सोया हुआ कोई साँप। नीलू रोज माँ से जिद करती कि वे भी कुसुम की तरह दो चोटियाँ बनाया करें। उनकी बाँहें सूनी क्यों हैं? वे क्यों नहीं हरे-नीले गोदने गुदवातीं? कितना ही अच्छा होता कि वे लाल की जगह कुसुम की तरह हरी चूड़ियाँ पहनतीं। नीलू के इस 'कुसुम-राग' से माँ अपमानित हो उठतीं। उन्होंने हमेशा एक चोटी बनाई और लाल चूड़ी ही पहनी। एक बार चिढ़ कर नीलू को कस कर चाँटा जरूर मारा था। नीलू दूर गिरी थी, जोर से रोई थी लेकिन उस रोज माँ ने उसे दुलारा नहीं था। वे बड़बड़ाती रहीं थीं। नीलू को कुसुम का रूप जल्द ही भूल गया। लेकिन याद रह गए चंद सवाल... 'कुसुम गंदी क्यों है?', 'कुसुम गरीब क्यों है?', 'गरीब गंदे क्यों है...?'

नीलू को अपनी माँ और चाचियों के साथ दस वर्ष की उम्र में तीर्थ पर जाना याद है। वे सब रानी सती माँ के मंदिर गईं थीं। मंदिर पर औरतों का प्रचंड जमावड़ा देख कर वह डर गई थी और घर की स्त्रियों के बीच छिप कर चलने लगी थी। असंख्य भक्तों और दुखियारों के पीछे पंक्तिबद्ध चलते हुए वे दर्शन के लिए चौरा तक पहुँच पाए थे। सभी

भक्तों के दिलों में अपनी-अपनी जुदा प्रार्थनाएँ रही होंगी। कोई असाध्य रोग का मारा, किसी का पति सौत के वश में, किसी के सिर पर देवी आती, किसी के बच्चे पर प्रेत होगा, किसी का जवान बेटा बेरोजगार... नीलू की सबसे छोटी चाची को संतान की मनोकामना पूर्ण करने के लिए यहाँ लाया गया है। यहाँ महिलाओं की तादाद बड़ी थी लेकिन साथ पुरुष भी थे, बूढ़े, जवान और बच्चे भी। दुखियारिनों से विलग सुखियारिनें दूर से नजर आ जाती थीं।

वे अपनी मन्नतें पूरी होने के अवसर पर चढ़ावों से लक्-दक् हुईं मंदिर पहुँची थीं। वे अघाई शक्लों वाली महिलाएँ थीं। वे कांतियुक्त थीं और अपने श्रृंगार-वस्त्र के प्रति सचेत भी। उनके हृदय में भक्ति का उछाल संशय-रहित था और उनकी प्रार्थनाएँ सस्वर! - रानी सति माँ के किस्से नीलू ने घर और पड़ोस की बड़ी-बूढ़ियों के मुँह से खूब सुन रखे थे। यह कहने की बात नहीं कि उसके बाल-मन पर उनकी गहरी छाप थी। रानी सती माँ उसकी आदर्श थीं। नवकिशोरी नीलू कल्पना की पींगें झूलती जैसा कि हर लड़की झूलती है। वह एक सजीले नवयुवक की धुँधली सी ही तसवीर देख पाती - अपने पति की। यह अवश्य ही सती माँ का भीषण प्रभाव रहा होगा कि 'प्रेमी' नामक जीव उसके खयालों में कभी प्रविष्ट न हो सका। प्रेम सिर्फ पति से होता है। वह अपने पति से बेइंतिहा प्रेम करेगी। वह उसके लिए जिएगी, सजेगी, मेंहदी लगाएगी, गुलाब जैसे तलुवों पर महावर रचाएगी, बक्से से निकाल कर एक से एक वस्त्राभूषण पहना करेगी... कि यह पति के सुख के लिए उतारे भी जाते हैं ऐसी सांसारिकता से वह अभी कोरी थी। पति के स्वास्थ्य और चिरायु की मंगलकामना के लिए वह उपवास रख-रख कर स्वयं सूख कर काँटा हो जाएगी। ईश्वर कभी न करे, यदि... तब वह सती हो जाएगी। - ऐसा उत्कृष्ट प्रेम करेगी वह!

आखिर नीलप्रभा सदा छोटी और कोरी तो नहीं रह सकती थीं। एक दिन बड़ी भी हो गईं। जल्द ही उनके दिवास्वप्न तितली के पंखों पर लगे रेशमी पराग-कण की तरह जीवन की पहली धूप में सूख कर बदरंग हुए, फिर न जाने कहाँ भुरभुरा कर हवा हो गए? उनकी आँखों के सामने दुनिया के कितने ही सत्य नंगे होते रहे और आदर्श बेपर्द! ...राजा की कोई एक रानी तो होती नहीं। वे सैकड़ों होतीं। प्रेमाग्रह या बलात्कार से बनाई गईं रानियाँ - हर रानी, राजा की चंद रातों का नूर! क्या प्रेम एक से नहीं होता,

कई से किया जाता है? ...हिजड़ों के पहरे में दम तोड़ती रानियाँ... विषाद में डूबीं, धर्म में सनी-लिप्त, कितनी ही विक्षिप्त! साँस दर साँस तड़फड़ाती हुई रानियाँ। सती हो जाती रानियाँ। राजा की पराजय पर जौहर कुंड में सामूहिक झुलसती रानियाँ। - क्या बदतर होता उनका दुश्मन के हरम में जाना? या किसी साईस की प्रेयसी बन जाना? प्रेम और धर्म दोनों ही का ठिकाना गरीब की कुटिया नहीं। गरीब की विधवा मजदूरी कर, अपना और बच्चों का पेट पाल लेगी या किसी के संग हो लेगी।

वहीं राजा या सेठ की विधवा 'सत्' ठान लेगी... और गाँव के गाँव लोग उठ कर चले आएँगे गगन-भेदी जयघोष करने ताकि सती की चित्कार डूब जाए। प्रेम की चिता पर जलने वाले दिव्य मुस्कान के साथ शनैः-शनैः भस्म होते हैं - यही विधान है। भक्तगण यूँ घेरो, कि कोई अधभूनी नंगी मछली कूद कर बाहर न आने पावे! न जाने, सती को दिव्यता का लोभ था या उसकी मजबूरी रही थी? एक मंदिर का निर्माण होगा। जब तक सूरज-चाँद रहेगा, तब तक सती का नाम रहेगा। दूसरी ओर, काशी-वास करतीं असंख्य प्रेम दिवानीं। वे अपना सिर घुटाए, आधा पेट खाए, जमीन पर इकहरी श्वेत वस्त्रों में सोतीं, रोज गरीबी और वासना के भोग चढ़तीं। क्या उन्होंने दिवंगत पति के प्रेम में वैराग्य ले कर प्रभु के चरण गहे हैं? प्रेम और प्रभु न हुए सरकारी टकसाल के सिक्के हुए - जितने गंगा मईया के पेट में, उससे अधिक उसके घाट पर बिखरे हुए... लावारिस! इस उथल-पुथल के बीच नीलप्रभा कहाँ हैं? ...श्रीमती नीलप्रभा मनोहरलाल अग्रवाल? - हैं, वे हैं और सदा बनी रहेंगी। उस नन्हें सुराख भर आसमान के सहारे वे जीती रहेंगी। जीवन नश्वर है और मोह मूर्खता। अय्याजी जवानी में ही विधवा हो गईं थीं। जीवन भर का पवित्र तप उनके बिछौने को अपवित्र होने से नहीं बचा पाता। अम्माजी का सतीत्व उन्हें उनके पैरों पर नहीं दौड़ा पाता। यदि शरीर नश्वर है तो सतीत्व क्यों नहीं? प्रेम आसमान में उड़ने वालों को मिलता है, जिन्हें पिंजरे का पंछी हसरत से देखता है। नीलप्रभा का इन बातों को जान लेना कैलेंडर के किसी वर्ष, तिथि या पहर में दर्ज नहीं।

अब पहले वाली बात नहीं रही। बटुकनाथ और नीलप्रभा खुल कर बातें कर लेते हैं, अक्सर अन्य की उपस्थिति में। नीलप्रभा ने कभी उनसे परदा नहीं किया लेकिन पहले उनकी मौजूदगी जानते हुए वह आया न करतीं। अब वे परिवार की स्त्री की तरह

आराम से आया-जाया करती हैं। वे किस्से-कहानियों पर खूब बातें करती हैं। उनके मन में कोई शंका उठे तो बटुकनाथ से बेखटक पूछ कर उसका निवारण कर लेती हैं। एक दिन की बात है - बटुकनाथ अपनी मेज पर बैठे कुछ लिख रहे थे। नीलप्रभा वहाँ आईं। वे कुछ दिन पहले शरतचंद्र का एक उपन्यास पढ़ने के लिए ले गई थीं सो आज वही लौटाने आई थीं। उन्हें वहाँ पाते ही हमेशा की तरह बटुकनाथ के मन में बात करने की, उन्हें अपने पास रोक लेने की लालसा जागी। वे पूछ बैठे, "आपको यह उपन्यास कैसा लगा?" नीलप्रभा ने उकताते हुए जवाब दिया, "मनहूस।" यह उत्तर बटुकनाथ के लिए बिल्कुल अप्रत्याशित था। उन्होंने चौंक कर पूछा, "अरे! ऐसा क्यों?" वे बोलीं, "प्रेम कहानियाँ मुझे अच्छी नहीं लगतीं।" बटुकनाथ - "संसार में ऐसा कौन होगा जिसे प्रेम कहानियाँ न पसंद हों? यह बात माननी मुश्किल है।" नीलप्रभा - "प्रेम कहानियों के अंत इतने हृदय विदारक क्यों होते हैं? हम कितनी आस लगा कर इन्हें पढ़ते हैं और हमारे हिस्से सिर्फ आँसू आते हैं।

यह कितनी वाहियात बात है? ...लेखक हमें उल्लू बनाते हैं।" लेखकों के प्रति ऐसी कठोर राय बटुकनाथ ने आज से पहले किसी के मुँह से नहीं सुनी थी। वे नीलप्रभा को समझाते हुए बोले, "भला आप ही बताइए, क्या इस संसार में प्रेम प्राप्य है? लेखक झूठ तो नहीं लिखते?" नीलप्रभा ने तुरंत प्रतिवाद किया, "जब प्रेम इस संसार में प्राप्य नहीं और वह कहानियों में भी प्राप्य नहीं, तब हम वे कहानियाँ क्यों पढ़ें? प्रेम की चर्चा भी क्यों करें?" बटुकनाथ निरुत्तर हो गए। वे चुप लगाए बैठे रहे। नीलप्रभा ने हाथ में लिए उपन्यास को यथास्थान अलमारी में सजा दिया और जिस रास्ते आई थीं, उसी रास्ते उलटे पैर लौट गईं। बटुकनाथ के दिल में अपनी कही की छाप और पैरों की धमक छोड़ते हुए, वे उनकी आँखों से ओझल हो गईं। उनकी पायल का क्षीण होता स्वर सुनाई देता रहा... बटुकनाथ विचारमग्न बैठे रहे।

हफ्ते बीतते जाते। वे दल बाँध कर महीने बन जाते और महीने भी न जाने कहाँ गुम हो जाते? इस तरह समय अपनी रफ्तार पर कायम था। प्रेम गहरा होता जाता था और इजहार गुम-दर्द चुभता जाता था। बटुकनाथ पर अब लड़कपन सवार न होता, वे छेड़ते नहीं। नीलप्रभा की मुस्कान चंचल न होती, उनकी निगाहें भरसक झुकी रहतीं। वे जितनी मेहनत से कुछ विशेष लजीज पकवान बना कर भेजतीं, सामने आने पर

उतनी ही बेपरवाह हो जातीं। बटुकनाथ सप्ताहांत पर जब आते, कहीं बाहर न निकलते। फिर भी नीलप्रभा जैसे ही उनके सामने पड़तीं वे अजनबी बन जाते? दोनों ख्वामखाह एक दूसरे को सताते। नीलप्रभा छिप कर रोतीं। बटुकनाथ अंतर्मुखी हुए जाते। बाहर सब कुछ ठीक चलता रहा... या ऐसा सबको लगता रहा।

शाम, बटुकनाथ दफ्तर से अपने कमरे पर लौटे। वे ताला खोल कर भीतर घुसना ही चाहते थे कि उनका पैर फर्श पर पड़े हुए पोस्टकार्ड पर जाते-जाते बचा। वे चकित हुए, यह उन्हें दफ्तर में क्यों न मिला? फिर ध्यान आया, आज वे आधे दिन की छुट्टी ले कर एक दुर्घटनाग्रस्त मित्र को देखने अस्पताल चले गए थे इसलिए रामनाथ डाकिया पत्र यहाँ डाल गया होगा। उन्होंने सोचा किसी पाठक या संपादक का पत्र होगा और उसे उठाने के लिए झुके। लेकिन यह लिखावट तो शैलकुमारी की है? घर पर सब कुशल-मंगल हो...? पत्र पढ़ते ही उनकी चिंता बढ़ गई। शैल को सरोज के ससुराल से संदेश आया है। सरोज पैर फिसल जाने से आँगन में गिर गई है। एक पूरा दिन वह अस्पताल में रही है। डॉक्टर ने 'बेड-रेस्ट' की सख्त ताकीद कर दी है। उन लोगों ने सरोज की बेहतर सेवा और दिलजोई के लिए शैल से वहाँ आने का बहुत अनुरोध किया है। ऐसा समाचार पा कर शैल भी बेसब्र हो रही हैं बेटी से मिलने के लिए। वे हजारीबाग जाना चाहती हैं। घर को नौकर पर छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए उनसे पत्नी ने घर आने का अनुरोध किया है। - पत्र पढ़ कर पहले तो बटुकनाथ ने ईश्वर का लाख शुक्रिया मनाया कि सरोज और होने वाला बच्चा सलामत हैं। फिर वे कुछ पशोपेश में पड़े रहे कि छुट्टियों का क्या करें? फिर सोचा कि सोचना क्या है? भगवान की कृपा बस बाल-बच्चों पर बनी रहे। वे सब मंगल करें। उन्होंने दराज से कागज-कलम निकाले और छुट्टी की अर्जी लिखने बैठ गए।

बटुकनाथ घर पहुँचे। इस बार वहाँ का माहौल निराला है। हर तरफ चहल-पहल है। शैलकुमारी का लगभग सारा सामान कमरे में बँधा रखा है। वहीं थोड़ी चीजें अभी बाहर बिखरी पड़ी हैं। आँगन में चौकियों पर दो रेशमी साड़ियाँ फैली हैं। इन्हें शंकर ने धूप दिखाने के लिए फैलाया होगा। शैल कुमारी स्वयं रसोईघर में बैठीं, शंकर की मदद से समधियाने ले जाने के लिए विभिन्न तरह के पकवान छान रही हैं। मियाँ-बीवी में मशविरा हुआ और बटुकनाथ ने मुनासिब समझा कि शैल सुबह वाली गाड़ी से दूसरे

दिन जाएँ। उन्हें हजारीबाग पहुँचाने संग शंकर भी जाए परंतु वह रात होने से पहले वापिस लौट आए। नौकर के रहने से बटुकनाथ को भी कोई दिक्कत पेश न आएगी। सुबह यात्रा पर निकलने से पहले शैल कुमारी ने सूखे नाश्ते और बने पकवानों में से एक हिस्सा बटुकनाथ के लिए रसोईघर के डिब्बों में रखवा दिया। इसी तरह उनका सुबह का नाश्ता और दोपहर का भोजन भी ढाँक के रखवा दिया गया। शाम को शंकर लौट ही आएगा। कोई बात हो तो पड़ोस में नीलप्रभा थी हीं। शैलकुमारी ने पूजा-घर में जा कर देवताओं के सामने माथा टेका। शंकर ने ताँगे पर उनका सामान लादा। जब मालिक-मालकिन ताँगे पर सवार हो गए तब वह भी उछल कर पायदान पर बैठ गया। ताँगे वाले ने मुँह से टिट्कारी निकाली और घोड़े को चाबुक छुआया। टाँगा हिचकोला खा कर चल पड़ा... बस स्टैंड की ओर।

बटुकनाथ जब से पत्नी को विदा कर के लौटे हैं तब से अपने कमरे में बैठे लिख रहे हैं। उन्होंने अपने संपादक मित्र को यथासमय एक लेख देने का वायदा किया है। वे वह लेख पूरा करने में लगे हैं। इसी व्यस्तता में वे सुबह का नाश्ता करना भूल गए। या यूँ कहें कि उन्हें भूख ही न लगी। दोपहर होते उन्हें अपनी आँतों में तेज कुलबुलाहट महसूस हुई। उन्होंने कलम में ढक्कन लगाया और उसे मेज पर लिटा दिया। फिर कुर्सी की पुश्त से अपनी पीठ टिका कर ऐसी लंबी, गहरी साँस ली मानो पहली बार ले रहे हों। ...एक-एक कर उँगलियाँ तोड़ीं। "बड़ी गर्मी है।" - यूँ बुदबुदाए और आँगन की तेज धूप में निकल आए। उस लहकती दोपहर में चिड़िया का बच्चा भी पर नहीं मार रहा था। बिना पत्नी और नौकर की उपस्थिति के हवेली भाँय-भाँय कर रही थी। उनका जमुई वाला कमरा बहुत छोटा है इसलिए निर्जन रहते हुए भी उन्हें इस प्रकार का सन्नाटा पहले कभी अनुभव नहीं हुआ। वे चौका में खाना खाने बैठे।

ठंडे पड़े हुए भोजन को अधीरता से ग्रहण करते हुए उन्हें भान हुआ कि वे सुबह से भूखे थे। भोजन करने के पश्चात वे सो गए। - शाम साढ़े चार बजे विनोद एक ट्रे में गर्म चाय और प्लेट-भर ताजे भूँजे हरे मटर और चिवड़े दे गया। बोला, "माँ ने भिजवाया है।" वह बहुत शर्मीला लड़का है। रोकने पर रुका नहीं, भाग गया। बटुकनाथ ने शाम का नाश्ता प्रसन्नचित्त हो कर खाया। अँधेरा घिरते-घिरते शंकर घर लौट आया। आते ही उसने समधियाने की खैरियत खबर सुनाई। ...सरोज दीदी की तबियत पहले से

भली है, बिस्तर पर लेटे रहती हैं। डॉक्टर ने चलने-फिरने से मना किया है। ...माँजी को आया देख कर सब लोग बहुत खुश हुए। ...दीदी की सास उनकी खूब खातिर तवज्जो कर रही हैं। ...खुद शंकर ने खूब डट कर खाना खाया, विदाई में उसे पैसा मिला। - शंकर खुश है। कुशल क्षेम के समाचार पा कर बटुकनाथ भी प्रसन्न हैं। उनके चेहरे का तनाव ढीला पड़ गया है। वे हल्के-फुल्के मन से सैर के लिए निकल पड़े। उन्होंने मित्र को पढ़वाने के लिए अपने लेख का मसविदा जेब में साथ रख लिया है। उधर शंकर कुँए पर नहाने चला गया। नहा-धो कर वह रात के भोजन की तैयारी में जुटेगा। आज वह मालिक को खिला-पिला कर जल्द ही चौका-बर्तन से निबट लेगा। दोहरी यात्रा की थकान उसे घेर रही है। वह लंबी तान कर सोएगा।

...चार दिन सूनेपन में कट गए। बटुकनाथ बिल्कुल बेकल हो उठे हैं। उनका मन भारी और जी उचाट सा रहने लगा है। उनका लिखने में दिल नहीं रमता। कुछ पढ़ना चाहते हैं तो अपने खयालों की वीरानी में भटक जाते हैं। वे पैरों में चप्पल डाल, कभी बाजार में मारे-मारे फिरते हैं। आजकल पुराने मित्रों से भी चौंक कर मिलते हैं। चार ही दिनों में शंकर की चाँदी हो आई है। वह छुप कर सारी दोपहर अपने यारों यानी मोहल्ले के अन्य नौकरों संग ताश की बाजियाँ खेलता है। उसे पुकारने वाला कोई नहीं। नीलप्रभा कभी शंकर को बुला कर, कभी बच्चे को भेज कर नियमित रूप से बटुकनाथ की मनपसंद चीजें बना कर भेजती रहती हैं। लेकिन वे भूल कर भी सामने नहीं आतीं। शायद उन्होंने कोठे पर चढ़ना भी छोड़ दिया है। - बटुकनाथ का गुस्सा बढ़ता जा रहा है। क्या वे इतने गए-गुजरे हैं कि उनसे अपनी परछाईं भी छुपाई जाए? और यदि ऐसा ही है तो यह नित-नए पकवान किसके वास्ते? ...यह नौटंकी किस लिए? इतना बेगानापन... उन्होंने कभी सोचा भी न था! बटुकनाथ ने शंकर से कहलवा दिया कि नीलप्रभा इतनी तकलीफ न उठाया करें, वे अकेले इतना खा नहीं पाते। इन चीजों की उन्हें आवश्यकता नहीं।

पाँचवी रात - शंकर ने मालिक को भोजन करवाया, स्वयं खाना खाया, रसोई समेटी, बर्तन माँजे और अपनी कोठरी में सोने चला गया। कमरे में घन-घन चल रहे पंखे के बावजूद उमस से बुरा हाल हुआ जा रहा है। बटुकनाथ ने मेज पर से अपना पुराना ट्रांजिस्टर उठाया और आँगन के खुले में चले आए। वहाँ हमेशा एक चौकी पड़ी रहती

है। वे जा कर उसी चौकी पर लेट गए, बिना बिछावन या दरी-चादर के ही... उदास और उद्‌विग्न मन लिए। पास ही, जमीन पर पड़ा हुआ ट्रांजिस्टर बज रहा है। लेकिन आज गीतों का माधुर्य उनके मन पर रच नहीं रहा। वे एकटक आसमान को देख रहे हैं। वहाँ तेजी से बादल घिर रहे हैं। घबराया हुआ चाँद उनके बीच लुकछिप कर चल रहा है, कहीं वे उसे ग्रास न लें? बटुकनाथ आज हर गुम हुए तारे की पड़ताल में लगे हैं। कभी भी बूँदा-बाँदी शुरू हो सकती है। - छत पर एक काली परछाईं डोली... प्रेत? नहीं-नहीं... नीलप्रभा! इतनी रात गए छत पर क्या कर रही हैं? बटुकनाथ उछल पड़े। न सोचा, न समझा, न जाने उनमें इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई? वे आगे बढ़ चले।

उन्होंने दोनों आँगन के बीच के दरवाजे को अपनी तरफ से निःशब्द खोल दिया और अपने कमरे में लौट गए। वे कमरे के दरवाजे की आड़ में एकाग्रचित्त खड़े रहे, कयामत की राह में! ...आखिर कमरे की पीली रोशनी के घेरे में नीलप्रभा ने प्रवेश किया। वे उस रोशनी से भी अधिक पीली मालूम होती थीं। कमजोर भी। मानो मोर्चे पर हारा कोई घायल सिपाही मौत के आगोश में बढ़ रहा हो। उन्होंने अपने आँचल के भीतर छिपा एक कटोरदान निकाल कर मेज पर रखा और बटुकनाथ से नजरें चुराते हुए पूछा, "आपने शंकर से मना क्यों करवाया?" - यह सुनना था कि बटुकनाथ का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ बैठा। उन्होंने चाहा कि वे नीलप्रभा को बुरी तरह से डाँट दें, चिल्ला पड़ें, 'नहीं चाहिए कुछ...!' उनकी चार दिनों से बढ़ आई दाढ़ी में जगह-जगह चाँदी के तार झिलमिला रहे हैं। उनकी आँखों के गहरे गड्‌ढों में कुछ दीवानावार सा धधक रहा है। - वे चुप रहे। बिल्कुल चुप! दोनों की आँखें परस्पर उलझ गईं और युग बीत गए। आाखिरकार नीलप्रभा ने तड़प कर कहा, "मैं और न रह सकी। ...मुझे रोक लें!" वह यह तो हरगिज न कहने आई थी? वह तो सिर्फ रूठे को मनाने आई थी। लेकिन यह सच था और यही सही भी। बटुकनाथ ने नीलप्रभा की आँखों में देखा। वहाँ चुनौती थी या प्रार्थना, या दोनों ही, यह तय करना उन्होंने जरूरी नहीं समझा। उनकी पाषाण काया में हरकत हुई। यह 'स्लो मोशन' के वे पल थे जब हकीकत और ख्वाब एक हो जाते हैं। उम्र का एक लंबा फासला तय करने बाद वे फिर लौट रहे हैं। वे छोटे से छोटे हुए जा रहे हैं, मोनू से भी छोटे। मानो नीलप्रभा के आँचल में छुपा हुआ नन्हा शिशु...

बाहर बूँदा-बाँदी शुरू हो गई है। वह तेज हो रही है। कमरे के खिड़की और किवाड़ बंद हैं। बाहर चौकी के नीचे छूटा हुआ ट्रांजिस्टर भीग रहा है और बज रहा है। किसी देर रात के संगीत कार्यक्रम में नय्यरा नूर की शहद आवाज में फैज अहमद फैज की नज्म बज रही है - "तुम मेरे पास रहो, मेरे कातिल, मेरे दिलदार मेरे पास रहो... जिस घड़ी रात ढले... आसमानों का लहू पी के सियह रात चले... किर्ररर-कड़र-कट्... बैन करती हुई, हँसती हुई, गाती निकले... खर्र- किट्..ट-ट... दर्द के कासनी पाजेब बजाती निकले... खड़र... टक-कटखर्ररर..." बरखा का पानी घुस जाने से ट्रांजिस्टर बुरी तरह खड़खड़ाने लगा है। खड़खड़ाने के एक विलंबित स्वर के साथ वह निस्तब्ध रह गया। अब वह बारिश में पड़ा चुपचाप भीग रहा है। वह बिगड़ गया है। जैसे कुछ छवियाँ बिगड़ गई हैं। फिर नई तसवीर बनेगी, प्रेम में पगी हुई, जीवन की धड़कन लिए। तेज हवा के झोंके ने बटुकनाथ के कमरे की खिड़की का पल्ला खोल दिया - "भड़ाक्!" बारिश की एक जबरदस्त फुहार अंदर बरस गई। उनकी मेज पर रखा कागज भीगा, कलम लुढ़क कर नीचे गिर गई - "ठप्प!" कलम की टूटी नोक से दो बूँद रोशनाई फर्श पर फैल गई। कलम खामोश हो गई।

यह किस्सा यहाँ खत्म नहीं होता। वह यहाँ से उठेगा और निष्क्रयन काल में जिएगा... जोखिम उठाते हुए।